# अधूरी मूरत

रांगेय राघव

## दो शब्द........

युद्ध के बाद संसार में एक नया जीवन, और साहित्य में अनेक नई विचार धाराओं का प्रसार हुआ।

मंडल के सामने कई कठिनाइयां आई, कागज का अभाव, महंगी छपाई।

आज स्वतन्त्र भारत की भूमि पर जो नवीन चेतनायें कार्य कर रही हैं। मंगल प्रभात की इस बेला में यह विचारों की 'पत्र पुष्प' भेंट........

श्रीयुत रांगेय राघव ?

हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित लेखकों में से एक हैं, आपके उपन्यासों, कहानियों का अपना व्यापक क्षेत्र है। कला में अपनी उड़ान है-मौलिक विचार धारा और शैली है।

यह अधूरी मूरत-उनके विचारों की देन है।

प्रकाशक

मंडल का नवां नक्षत्र

अधूरी मूरत

कहानियां

# ग़ाज़ी

आगरे के प्राचीन नगर में बाज़ार के ऊपर एक बड़ी लाल मस्जिद है। कहा जाता है, यह मुगलों के ज़माने में एक भव्य स्थान था। अनेकानेक युग बदल गए हैं; किन्तु हाथ-मुँह धोकर जब अस्सी बरस का बूढ़ा इमाम सामने लड़कों को बिठा कर पढ़ाने लगता है, तब उसके होंठों पर एक कम्पन छा जाता है और लगता है कि वह व्याकुल हो उठा है और नहीं जानता कि अन्तर की उस हलचल को छिपाने के लिए वह क्या करे? बूढ़े का मुख अनेक ऋतुओं के थपेड़े सह सहकर झुर्रियों से भर गया है; किन्तु उसकी सफेद दाढ़ी को देख बाज़ार के गुण्डों का भी सिर अज्ञात श्रद्धा से झुक जाता है। वृद्ध के शरीर पर उसका लम्बा मटमैला ढीला ढाला सा कुर्ता झूला करता है।

अब उसको कोई कहीं नहीं है। सुबह की ठण्डी हवा में जब उसका अजां का स्वर गूंजने लगता है, तब पानवाले रऊफ का पिंजरे में बन्द तोता टें-टें कर उठता है,मानो वह भी उसीकी याद में बोल उठता है, जिसको इमाम अपने उस लम्बे पथ से याद कर रहा है, जिसका प्रत्येक पल काफ़िले के एक एक ऊंट की तरह जिन्दगी के रेगिस्तान पर चलता चला आया है। और गंभीर कण्ठ का वह स्वर थोड़ी देर तक चारों ओर चक्कर मार और उस निस्तब्धता में कांप फिर एक भारी भाफ़ की तरह उड़ कर आसमान में लटक जाता है।

इस्लामी होटल में नीचे झाड़ू लगने लगती। रोज़ आने वाले दोनों पठान चाय पीने लगते और होटल का लड़का कभी उनको घूरता और दबी ज़बान में कभी कभी मज़ाक करने की भी कोशिश करता। किन्तु जब बाज़ार की वह घोर हलचल भी मस्जिद की सीढ़ियों पर शोर मचाती हुई चढ़ने लगती, तो बरबस ही उसका मुंह बन्द हो जाता और वह चुपचाप दबे पांव लौट जाती। कभी कदा आसमान में हवाई जहाज उड़ते, कभी कदा नीचे कसाई की दुकान से गोश्त के कच्चे टुकड़े काटने का शब्द आता और फिर कभी कभी दो तीन दुकानें छोड़ कर जो दुमंजिले पर एक छत है, वहां बही खाते लेकर बाज़ार के बनिये आकर इकट्ठे होते और सट्टा होता। किन्तु वृद्ध इन बातों में कभी दिलचस्पी नहीं लेता। सोचता, यह तो सब देखा हुआ है। इसमें है ही क्या ?

लड़के सामने बैठ झूम-झूम कर पढ़ते। वृद्ध इमाम बैठा-बैठा देखता रहता कि लड़कों के कोमल कण्ठों की काँपती आवाज़ शीशे की तरह झनझनाती हुई मस्जिद के लाल पत्थरों से टकरा उठती और वृद्ध एक लम्बी साँस खींच कर ऊपर देखने लगता। उस समय लड़के कुछ देर को आपसमें ऊधम कर लेते और फिर वही सिर हिलाना, हिल-हिल कर पढ़ना। और जीवन की नवीनता ऐसे गुल मचाने लगती, जैसे बाग में बहार चहक उठती है, लहरों में चंचल कोलाहल होने लगता है।

वृद्ध ने अपने हाथ धोकर मुँह धोया और सीढ़ी से नीचे उतर चला। रऊफ की बूढ़ी झुकी माँ ने देखा और कहा—'आज कहाँ चले?'

'कहीं नहीं',—वृद्ध ने कहा और छज्जे पर ही बैठ गया।

कसाई अपनी मैली चादर ओढ़ कर दुकान में ऊँघ रहा था। बाजार पर दोपहर की थकान छाने लगी थी। एक आध नवायफ़ दिन में ही बाहर छज्जे पर आ बैठी थी और बाजार में आते जातों से आखों के खेल कर रही थी। कभी-कभी जब वह बनावटी अँगड़ाई लेने लगती, तो सामने दर्जी की दुकान से लड़कों की नजर उधर ही अटक जाती और फिर वे बगलों में हाथ

दबा कर भद्दे ढंग से हँसते। कुछ फ़ौजी सड़क पर से चक्कर लगाते हुए उसकी ओर सतृष्णा नयनों से देखते।...

बूढ़ी ने कहा—'इमामपाक, कहो, अब भी खुदा हम पर मेहरबानी क्यों नहीं करता ?'

इस्लामी होटल में शीरीं-फ़रहाद का नाटक ग्रामोफ़ोन पर बज रहा था। उसका स्वर कभी-कभी इधर भी थिरकने लगता और फिर प्यालियों की खनखनाहट होती। वृद्ध ने एक बार अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरा और कहा—'रऊफ की माँ, खुदा क्या करता है, यह तो हम लोग, जो गुनाहों में डूबे हुए हैं, । इतनी आसानी से नहीं समझ सकते।'

'दुरुस्त है'—जब्बार ने साइकिल का ट्यूब तसले के पानी में घुमाते हुए कहा। वह देख रहा था कि कहीं पंचर तो नहीं रह गया है ?

वृद्धा ने पोपले मुँह से एक बार कुछ कहना चाहा, किन्तु फिर कुछ सोच कर रुक गई। रऊफ़ ने घुटनों पर जोर देकर कहा-अब कल से देखना, क्या लुत्फ आएगा। कहते हैं, दो छटाक गेहूँ का राशन मिलेगा और···।' वह एक कठोर हँसी हँस पड़ा जिसमें एक नहीं, अनेक वेदनाओं की घुटन लुट गई और लुटेरा आस्मान तक अपने डंके की चोट को गुँजा कर इन्सान का गला घोंटने लगा।

वृद्धा ने कहा —'अल्लाह रहम कर। हमारे ज़माने में फकीर को भी बुला-बुला कर ख़ैरात दी जाती थी, बेटा।'

कसाई, जो जाग कर सुन रहा था, कह उठा—'यानी भिखारियों को पाला जाता था। अंगरेजों का रहम है अम्मी, अब हिन्दुस्तान को भिखारियों की कोई जरूरत नहीं। उन्हें भूखों मार दो।

जब्बार ने एक दम जोश में उठते हुए कहा—'और यह भिखारियों की बला हटाने के लिए सबको ही भिखारी बना दिया। जिस मुल्क में कोई खायगा, वहीं तो भूखे की आह लगेगी।' वह भी हँसा और वातावरण पर एक हल्कापन छा गया।

रऊफ की मां ने खखार कर थूका और मुँह में तम्बाकू डालते हुए कहा—'बेटा, एक वह भी दिन था, जब हमारी माँ कहती थीं कि ये फिरंगी...।'

रऊफ ने चौंक कर जरा कठोर स्वर में एक दम टोक दिया— 'अम्मी!'

वृद्धा फिर मुस्करा उठी, जैसे कुछ नहीं हुआ। बात बदल गई। वृद्धा ने कहा— 'अभी कितनी और हैं, इमामपाक

इमाम ने बिना उसकी तरफ देखे ही कहा—'कितनी भी हों, मुझे तो वह काम दिया है उसने, जिसके लिए एक दिन किले के बुर्ज में बादशाह तड़पा करता था।'

वृद्ध की बात कितनी गहराई से छा गई, यह वृद्धा के अतिरिक्त और कोई नहीं समझा; क्योंकि जिस दिन की बूढ़ा कह रहा था, सिवा वृद्धा के उस दुनिया की छाया के निकट और कोई नहीं।

और शीरीं—फरहाद का वह नाटक अब भी बज रहा था। उसमें गलत इतिहास था, लेकिन इन्सान की वह भयानक ताक़त 'जिसने बारूदसे नहीं' बेलचे से चट्टानों को निचोड़ कर पानी निकाल दिया था, जैसे कोई सल्तनत के फरेब में से सचाई का आब निकाल ले।

साँझ की धूप मस्जिद के ऊँचे गुम्बद पर ठण्डी होकर लेटी-लेटी सरकने लगी थी। इमामने कहा—'उन दिनों शाहंशाह औरंगजेब कुछ बेचैन रहा करते थे। उन्होंने सिक्खोंके गुरुको कैद कर लिया। और जानते हो,उस पीर ने कैद की घड़ी में कैद खाने की खिड़की से क्या देखा ?'

छोटे-छोटे बच्चों ने उत्सुकता से कहा—'क्या देखा, इमाम-पाक ?'

वृद्ध ने कहा-कहा 'उसने देखा'दूर समुंदर पर फिरंगियों के कई जहाज खड़े थे। वे हिन्दुस्तान से व्यापार करने आए थे।

सौदागरों को शाहंशाह ने रहम करके रहने के लिए जमीन दी थी। और उसने देखा, जहाजों के सफेद-सफेद पाल हवा से भर कर फूल उठे थे।

बच्चों का ध्यान एकत्र हो गया। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि गुम्बद पर अब एक कौआ आकर बैठ गया है और अपनी गर्दन को देखने के लिए ऐसे घुमा रहा है, जैसे उसे एक ही आंख से दिखाई देता है। और दिन होता तो, यूसुफ जरूर मोहसिन की बगल में कुहनी मार कर उसे दिखाता और फिर दोनों उस तरफ ललचाई आंखों से देखते।

हसन ने कहा—'फिर ?'

'फिर'—इमाम ने गंभीर स्वर में कहा—'उस पीर ने कहा कि एक दिन ऐसा आयगा, जब हमारे झगड़ों से बेईमान फायदा उठायेंगे और सारे हिन्दुस्तान पर ये सफेद पाल एक किनारे से दूसरे किनारे तक छा जायेंगे।'

इसी वक्त अस्पताल की सड़क पर बहुत से लोगों के गले से 'इन्कलाब जिन्दाबाद' सुनाई दिया। बच्चों के रोंगटे खड़े हो गए। वृद्ध सिहर उठा। उसने भर्राए गले से कहा—'बच्चो, मैं अस्सी बरस का बूढ़ा हूँ, लेकिन उन दोनों सतरों को कभी नहीं भूल पाता, जो मुगलों के आखरी चिराग शहंशाह बहादुरशाह के मुंह से उनके आखरी दिनों में रंगून के कैद-खाने में निकल पड़ी थीं...।'

'बादशाह और कैद ?'—बड़ी-बड़ी आंखें उठा कर मोहसिन ने साश्चर्य पूछा।

'हां बेटा, फिरंगियों ने उनके ६ बेटों के सिर काट, भालों की नोंक पर टांग कर उनका तोहफ़ा उनके बुढ़ापे के सामने पेश किया था।' वृद्ध की आंखें भर आईं, जैसे भीतर सारी नसें अब फट पड़ना चाहती हों और उनमें से रक्त के स्थान पर अरमानों की भस्म निकलने को आतुर हो—वह भस्म, जिसमें जगह-जगह अबुझ अंगारे निकल कर गिर पड़ेंगे और उनकी दहक से पत्थर भी पानी की तरह पिघल उठेंगे।

बच्चे स्तब्ध थे। उनकी आंखों में वही नफरत थी, जो जुल्म और बर्बरता के विरुद्ध हिन्दुस्तान के हर बच्चे की आंखों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी तरह सुलगा करेगी। मानो उन्हें गुस्सा इसका नहीं कि विदेशियों ने यह भी किया था, वरन् क्रोध इस बात का है कि सरे बाजार जोबन बेचने वाली यह तवायफ अपने-आपको पारसा कहती है और चाहती है कि हम भी इसे कुबूल कर लें कि इसकी माप-जोख ही इन्सानियत का पैमाना है। किन्तु नासमझ बच्चे खामोश थे। वृद्ध इमाम ने ही कहा — 'उस वक्त बादशाह ने अपने दिल की उस आंधी में से एक पैगाम दिया था—

*ग़ाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,*
*तख्ते-लन्दन तक चलेगी तेग़ हिन्दुस्तान की!'*

वृद्ध के होंठ कांप उठे। फिर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की अवाज थहर उठी। चुनाव का जमाना था। कांग्रेस, लीग, कम्युनिस्ट और न जाने कौन-कौन सी पार्टियां अपना-अपना जोर आज़मा रही थीं, क्योंकि गोरी सरकार ने कहा है कि वह हिन्दुस्तान को आज़ाद कर देना चाहती है! वृद्ध ने सुना। हसन कह उठा—'इमामपाक, फिर हिन्दू-मुसलमान आपस में क्यों लड़ते हैं? अब क्या अंगरेज़ों का राज नहीं है?'

'है क्यों नहीं, लेकिन लोग तो अपनी-अपनी खुदगर्जियों में उलझे हुए हैं। उन्हें क्या पड़ी कि गरीबों की या हालत है?'

हसन कुछ समझ नहीं सका। उसने फिर कहा—'इमामपाक, बादशाह ने तो कहा था कि जब तक ग़ाज़ियों में इमान की बू रहेगी...।'

'शाबाश!' वृद्ध ने कहा—'लेकिन कहां है इमान की बू? मैं चाहता हूं कि तुम में से हरएक में इमान की बू हो, तुम में से हर एक ग़ाज़ी बने। उस दिन भी बादशाह के तख्त के लिये हिन्दुओं ने तलवार उठाई थी। आज से पच्चीस वर्ष पहले एक बार फिर भाई-भाई मिल कर उठे थे, तब खूनी के पांव डगमगाने लगे थे। लेकिन बदकिस्मती से फिर फूट पड़ गई।' वृद्ध का स्वर तीखा हो गया। उसने कहा— 'बच्चो, रसूले-इलाही का पैगाम सुन कर गुलाम आज़ाद होते थे। आज आज़ादी को पैरों से कुचल कर हम मुसलमान बनने का दावा नहीं कर सकते।'

मोहसिन ने पूछा — 'लेकिन अब्बा तो कहते थे कि पाकिस्तान के बिना हम अंगरेजों से नहीं लड़ेंगे ।'

'नहीं, बेटा', वृद्ध ने कहा—'पाकिस्तान तो अंगरेजों के हाथ में गुलाम है । तुम्हारा घर तुम्हारा है, पाकिस्तान की भीख मांगते हो ? और वह भी एक भूखे गुलाम से ? उसे कोई तुमसे नहीं छीन सकता, अगर तुम आज़ादी के लिए खून बहाने को तैयार हो जाओ, क्योंकि जो तुम्हारा है, उसको अपना न समझने की बात कमज़ोरि-ए-जज़्बात है, दिमागी गुलामी है ।'

मोहसिन खामोश हो गया । वृद्ध ने फिर कहा—'मैं चाहता हूँ, तुम अभी से ज़ुल्मों से नफ़रत करने लगो । तुम्हारे खून की हर बूंद में बिजली की तरह यह ख्याल दौड़ा करे कि तुम इन्सान होने के पहले गुलाम हो । तुम्हें याद रहे कि तुम्हारी कोई हस्ती नहीं, क्योंकि तुम्हारा रहनुमा आज वह है, जिसके सामने तुम्हारी जान की कोई क़ीमत नहीं ।' बच्चों का जैसे खून जम गया था । वृद्ध ने धीरे से बात पलट कर कहा—'हाँ, बेटा हसन, सुनाओ तो हौले-हौले ज़रा—पहले आती थी . . .।'

और हसन गालिब के अशआर सुनाने लगा ।

इमाम के विद्यार्थी उसी मुहल्ले के लड़के थे, जो बारह बरस तक के होने पर भी इमाम के बुढ़ापे के सामने बिलकुल बच्चों-

जैसे थे। किसी का बाप बटन बेचता था, किसी का जिल्दसाज़ था, तो किसी का किसी कारख़ाने में काम करता था। सब ही गन्दे रहते और उर्दू सीखते; किन्तु शिक्षा का उनके सामने कोई ठोस महत्त्व हो, ऐसी गलती उन दिनों की गोरी सरकार ने कभी उनके पक्ष में नहीं की। मस्जिद के नीचे ही दीवट कबाड़िए की दुकान थी। उसका छोटा-सा लड़का चन्दू वहीं सब बच्चों के साथ खेला करता था।

मोहसिन चाकू से क़लम बनाते-बनाते उससे बातें कर रहा था। चन्दू कभी हंसता, कभी उछलता और कभी-कभी सूनी दुकान पर भी दृष्टि डाल लेता। दीवट मुहल्लों से टूटी-फूटी बोतलें ख़रीदने गया हुआ था। मोहसिन ने कहा—'अबे चन्दू,' वह जो है न हसन ? मैंने साले को दो झपाटे दिए।'

चन्दू उस समय मोहसिन की छोटी बहन के कान पकड़ कर उसे उठा कर दिल्ली दिखा रहा था और उधर अधिक तन्मय था। मोहसिन ने उसके ध्यान न देने से चिढ़ कर कहा—'क्यों बे कबाड़िए, साले सुनता ही नहीं। दूंगा अभी एक हाथ।'

चन्दू भला कब सुनने वाला था। उसने कहा—'अबे जा-जा, देख लिए तुझ जैसे सैकड़ों।'

'अब के न कहियो उल्लू के पट्ठे, वर्ना···।'

'वर्ना क्या ?'—चन्दू अकड़ कर सामने खड़ा हो गया।

अब तो मोहसिन फँस गया। आन का मामला था। उसने कहा—'देख, मान जा।'

'अबे जा', चन्दू ने घृणा से मुख विकृत करके कहा। इसी समय मोहसिन को एक झटका-सा लगा और चाकू से उँगली जरा कट गई। खून बह निकला। चोट साधारण थी, किन्तु रक्त की लाली ने उसे एक हमले का भयानक रूप दे दिया। दूसरे ही पल मोहसिन का चाकू उठा और चन्दू के अंगूठे से खून टपक पड़ा! इसके बाद यह दे, वह दे और चाकू छिटक कर दूर जा गिरा और दोनों सड़क की धूल में एक-दूसरे को पटखें देने लगे और दोनों ही नाली की तरफ़ कलामंडियां खाते हुए लुढ़क चले।

इसी समय जब्बार के बड़े-से हाथ ने चंदू का गला-पकड़ कर उसे मोहसिन से अलग कर दिया, और चंदू ने सुना—'क्यों बे साले, कहां है तेरा बाप? तोड़ दूंगा साले की हड्डियां...।'

'क्या हुआ?', कसाई ने दुकान से ही पूछा—'कौन है?'

'कोई हिन्दू लौंडा है।'—रऊफ़ ने बीड़ी का कश बाहर छोड़ कर कहा।

और 'हिन्दू' शब्द सुन कर बाजार के दो-एक राहगीर ठिठक गए! एक ने आगे बढ़ कर कहा—'क्या है? क्यों मारते हो उसे?'

जब्बार ने चन्दू का हाथ तो छोड़ दिया, और अकड़ कर बोला—'क्यों, तुम कौन होते हो उसके ? आ गए बड़े हिमायती बन के ?'

'होश से बोलना',—राहगीर ने लांग कस कर कहा—'समझा होगा यह तुम्हारा मुहल्ला है। मगर हिन्दूओं का खून कोई मर नहीं गया है, समझे !'

इसी समय एक गंभीर स्वर ने उनको रोक दिया। इमाम की दीर्घ काया बीच में थी। उसके हाथ में वही खून से भीगा हुआ चाकू था। बोला—'किस लिए लड़ते हो, बावलो ?' उसका स्वर कांप उठा।

जब्बार ने चेत कर कहा—'लौंडे का खून बहा है यह।'

'किसका खून बहा है ?'—इमाम का प्रश्न गंभीर आवरण सा सब के हृदयों पर छा गया। उस छोटी-सी भीड़ का कोलाहल थम गया और सबकी उत्सुक आंखें उस पर जम गईं। इमाम ने कहा—'तड़प रहा था अभी तुम्हारा हिंदू खून ! उबल रहा था तुम्हारा इस्लामी खून।

जब्बार, बता सकते हो, इस चाकू पर कितना खून हिन्दू है और कितना मुसलमान ?'

सुनने वालों के सिर झुक गए। इमाम ने कहा—'बेवकूफ़ो, जिनके पीछे लड़ते हो, वे क्या कर रहे हैं देखो और जरा आंखें खोल कर देखो।'

सब ने देखा—उस समय मोहसिन की छोटी बहन अपने नन्हें हाथों से कुर्त्ता उठा कर चन्दू की आंखें पोंछ रही थी, मानो समस्त मानवीय वेदना घुमड़ आई हो, जैसे एक गुलाम ने दूसरे गुलाम की मर्यादा को अपनी संकीर्णता को ठोकर मार कर पहचान लिया हो !

भीड़ छंट चली। इमाम वहीं खड़ा रहा। जब वह लौट-कर मस्जिद में पहुंचा, हसन को लगा, जैसे वह रो पड़ेगा। कुछ देर तक नीरवता छाई रही। फिर हसन ने पतली आवाज में धीरे से कहा—'इमामपाक।'

वृद्ध के मुंह से निकला—'बेटा ! एक दिन आगरे के इसी बाजार में गोरे सौदागरों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के गलों में फन्दे लगा कर फांसी पर लटकाया था ; लेकिन लोग शायद भूल गए हैं ...।'

हसन ने कहा—'लेकिन हम नहीं भूलेंगे, इमामपाक !'

'तू नहीं भूलेगा ?' वृद्ध ने गद्गद स्वर से कहा—'तू सचमुच नहीं भूलेगा ? तब, तब अल्लाह, अस्सी बरस बाद आज इन्सान में ईमान की बू आ रही !' ...और वह रो पड़ा।

उस रात हसन सो नहीं सका। शहर में लोगों में एक सनसनी थी। कोई कहता था—घटिया में लूट मच जायगी,

कोई कहता था—शहर में शीघ्र ही भयानक दंगा होगा। सामने के मुंशी जी कहते थे—उन्होंने अखबार में पढ़ा है कि जंग खत्म हो गया है, मगर हर मुल्क में बलवे हो रहे हैं। सरकार की घबराहट दिन पर दिन बढ़ रही है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या होने वाला है। बारह-तेरह बरस का हसन अधिक कुछ नहीं समझा, मगर बहादुरशाह की दोनों सतरें उसके दिमाग में गूंज रही थीं। घर-घर तहलका मच रहा था। राशन घटा कर रोज का दो छटांक कर दिया गया था, क्योंकि सरकार ज्यादा का इन्तजाम नहीं कर सकती।

दूसरे दिन अलस्सुबह इमाम ने देखा, हसन हाथ में एक कागज लिए खड़ा था। इमाम ने मुस्करा कर कहा —'पढ़ो।' और हसन की कांपती हुई आवाज गूंज उठी :—

शहीदों के खून में हुंकार उसकी गूंजती,
जिसने मर कर भी न इज्जत मुल्क की कुर्बान की।
'गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
तख्ते-लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।'
फिर बुला हमको रहा है दूर से वह कोहेनूर,
जुल्म का बदला तो क्या नोचेंगे तेरी शान भी।
होंगे तेरे; देख लेंगे कौन-से कानून हैं!
अब फरिश्ता बन रहा है देख लो शैतान भी!
भूख से हम मर रहे हैं राह के कुत्ते बने,
मौत के नुसखे बने हैं वह तेरे फरमान भी!

तख्तों-ताजों की अंधेरी आज धरती से मिटे,
गरजते मजदूर हम, मजलूम, देख किसान भी !
तेग चंगेजी न कर सकती कभी इन्साफ है,
एक हैं हम, टेक दे घुटने यहां तूफान भी ।
बादलों में बिजलियां टूटी तड़पती जो बर्छी,
लरज़तीं हैं मिल बगावत का बनीं उन्वान-सी ।
सल्तनत के धन पै हिन्दी पिट के अब फौलाद है,
देख हर गोशे में जागी आबरू इन्सान की !

हसन का स्वर रुक गया । वृद्ध तन्मय हो कर बैठा था । उसने विस्मय से सिर उठा कर पूछा—'यह तू ने कहा है हसन?'

हसन के अभिमान को चोट पहुंची । उसने कहा—'क्या मैं नहीं कह सकता, इमामपाक ?'

'रदीफ़ और क़ाफ़िये की कुछ गलतियां हैं, मगर वह कोई बात नहीं । लेकिन मुझे यकीन नहीं आ रहा । अल्लाह, सच कह ! क्या हिन्दुस्तान के बच्चों को अब बचपन भी नसीब न होगा ? क्या उनमें भी तू ने यह आग भर दी है ? क्या यह गुलामी आज इन्सान को पत्थर बना देना चाहती है ?'

वृद्ध उद्भ्रान्त होकर मस्जिद में टहलने लगा । आज बिसाती के बेटे ने उस तख्त को ललकारा है, जिस पर बैठने वाले का नाम सुन कर हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े राजा व नवाब कुत्तों की तरह दुम हिलाने लगते हैं, क्योंकि उनके दिलों में

ईमान नहीं रहा है—क्यों कि दौलत और ऐश का कोई ईमान नहीं है। ईमान है तो सिर्फ गुलाम का, क्योंकि वह पेट का ईमान है! वृद्ध को लगा, जैसे पत्थर का हर एक टुकड़ा अपनी जगह से उखड़ कर छिटक जायगा। आज जो यह लड़का अभी-अभी आग उगल रहा था, उस पर जैसे कानून का खूनी दरिन्दा झपट कर उसे मार डालेगा और इन्सान के खून से भीगे हुए होंठ चाट कर कहेगा—'यह तहजीब और तमद्दुन की इन्तहा है। इसके आगे कोई मजहब नहीं, कोई सुख नहीं।'

वृद्ध कांप उठा। उसने घुटने टेक हाथ बांध कर कहा—'अल्लाह, मुझे माफ कर। मैंने कोई गुनाह नहीं किया। मैंने राह पर दम तोड़ते हुए गिलबिले कीड़े से सिर्फ यह कहा है कि तू इन्सान है, रोटी पाना तेरा अख्तियार है। जो भी तेरे मुंह से तेरी रोटी छीनता है, वह जल्लाद है। उसे तू कभी भी माफ न कर, क्योंकि तू उससे न सिर्फ अपने ऊपर जुल्म करता है, बल्कि सांप के जहर की तरह बढ़ने वाले गुनाहों के अंधेरे को फैल जाने के लिए अपना उजाला भी समेट लेता है और वह दिन आ जाता है; जब उस अंधेरे में तेरे उजाले का बेड़ा ऐसे गर्क हो जाता है; जैसे दलदल में राहगीर और फिर तू घुट-घुट मरने लगता है।'

हसन चुपचाप सुनता रहा। वृद्ध उठ खड़ा हुआ। उसने स्नेह से आगे बढ़ कर हसन के सिर पर हाथ फेरा और कहा—

'बेटा शाबाश; लेकिन तेरा बाप कहेगा कि इमाम ने मेरे घर के चिराग को कितने बड़े तूफान के बीच रख दिया।'

हसन ने अपनी मासूम आंखों से देखा और हठात् ही उसके मुह से निकला—'लेकिन मैं किसी से नहीं डरता, इमामपाक।'

इमाम ने सुना और मन-ही-मन कांप उठा।

शहर में हड़ताल थी। चारों ओर दुकानें बिलकुल बंद थीं। कुछ कालेज के लड़के सिगरेटों के लिए सड़कों पर चक्कर लगा रहे थे। दुकानदार दुकानें बन्द कर-कर के सड़क पर आ इकट्ठे हुए थे। मजदूरों और गरीबों की टोलियां इधर-उधर घूमती हुई 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगातीं, कभी 'महात्मा गांधी की जय' बोलतीं। उनके लिए गांधी का मतलब व्यक्ति से नहीं, किन्तु अपनी आजादी के लिए लड़ने की भावना के प्रतीक से था। बच्चों के झुण्ड जगह-जगह नारे लगाते हुए घूम रहे थे। राजनीतिक पार्टियों के जगह जगह एलान हो रहे थे। आज हर कोई बाहर था, क्योंकि रोटी की राजनीति थी और सबका पेट पुकार उठा था!

तीन बजते-बजते लोग जुलूस के लिए इकट्ठे होने लगे हर मुहल्ले में से क्रान्ति की धारा बही और जाकर एक जगह समुद्र

बनाने लगी। आज मजदूर, गरीब, मध्यमवर्ग, हिन्दू, मुसलमान, बच्चे, बूढ़े, औरतें वगैरा सब ही जूलूस में एक बन कर शामिल हुए थे। वे राजनीतिक पार्टियां, जो कल तक नहीं मिलती थीं, आज उन्हें जनता के उस अपार समूह में अपने-अपने झण्डे लेकर स्वयं आना पड़ा था, क्योंकि भारत के प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक ही प्रश्न था। कल जब नगर में स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया था, पार्टियों के अलग-अलग जुलूस निकले थे। और पुलिस ने सबको तितर-बितर कर दिया था, किन्तु आज 'रोटी-दिवस' था और सब एक थे !

जुलूस के उस भीम प्रवाह ने दूर-दूर तक बाजार को ढंक दिया, और जब सहस्त्रों वज्र कण्ठों से 'इन्क़लाब जिन्दाबाद' का स्वर गूंजने लगा, तब पत्थर की सड़कें अपना कण्ठ खोल कर मानो चौंक सी उठीं और दीवारों पर जा कर स्वर जैसे अंकुश मार कर उन्हें गुलामी की नींद से जगाने के लिये झकझोर उठा। घोड़ों पर बन्दूक धारी पुलीस चक्कर लगा रही थी। नाके नाके पर स्पेशल आर्म्ड-कान्स्टेबुलरी का सशस्त्र पहरा था। किन्तु लोग चिल्ला रहे थे—'अंगरेजी सरकार का नाश हो ! निकम्मी सरकार को बदल दो ! राशन को बढ़ाना होगा ! आध सेर गेहूं लेके रहेंगे।' और पुलीस उस बँटे हुए बर्त्त-जैसे जुलूस को देख भीतर-ही-भीतर कांप उठी थी। किस पर करेगा जालिम अपना राज, क्यों कि आज गुलाम अपने सारे भेद छोड़ कर वह मांग रहे हैं, जिसको न देने के लिए अत्याचारी ने धर्म की दीवार उठाई है।

इमाम अपने छोटे-छोटे विद्यार्थियों को लेकर मस्जिद पर खड़ा खड़ा उस विराट जन-समूह को गुजरते हुए देख रहा था। एकाएक भीड़ में किसी ने आवाज लगाई—'अखण्ड हिन्दुस्तान...!' उधर से आवाज लगी—'पाकिस्तान ले के रहेंगे...!' भीड़ में शोर मच उठा। कोई भी संयत नहीं रह सका। मुसलमानों ने कहा—'अपना अपना जुलूस अलग निकालिए।' हिन्दुओं ने कहा आप अपने नारों को बदल दीजिए।'

पुलिस मौका देख कर इस समय भीड़ तितर-बितर करने की फिराक में थी। एकाएक सहस्रों सिर मस्जिद की ओर उठ गए। इमाम हाथ उठा कर कह रहा था—'अभागे गुलामों, देखा नहीं था, जब थोड़ी ही देर पहले तुम सब एक हो कर जा रहे थे, तब वह नादिरशाही पुलिस भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाए खड़ी थी, और अब उसके हाथमें फिर पांसा आ जायगा। हिन्दू और मुसलमान होने की वजह से तुम गुलाम नहीं हो, रोटी के गुलाम हो। अगर पेट के बल पर भी तुम एक नहीं हो सकते, तो दुनिया में तुम कभी एक नहीं हो सकते—यानी कभी आजाद नहीं हो सकते। रोटी की सियासत आज तुम सबकी सियासत है। तुम वेदों और कुरआन की नई ज़िल्दें चढ़वाने के लिए लड़ रहे हो या अपने अपने पेट भरने के लिए? अरे, जब तक गुलाम हो, तब तक एक हो कर हुंकार उठो, भूल जाओ अपने सारे भेद-भाव...'

हसन ने स्तब्ध जन-समाज पर गर्म सीसा फैला दिया—'इन्क़ाब...!'

जन-समाज चिल्ला उठा—'जिन्दाबाद !' और जुलूस बढ़ने लगा। रोटी के लिए यह चट्टान-जैसी भीड़ आज इमाम की टाँगे झुकाने के लिए बढ़ रही थी। जिसकी जितनी रोटी है, उसे कोई छीन नहीं सकता; लेकिन जो सबकी रोटी को छीन रहा है...!

और आवाज गूंज रही थी—जालिम है सरकार विदेशी!' इमाम ने आगे बढ़ कर कहा—'हसन !' हसन स्तब्ध था, जैसे उसके भीतर खून इतनी तेजी से दौड़ रहा हो कि अब बोलना भी असम्भव हो गया था। इमाम ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—'कसम खा कि जब-जब यह दोनों बेवकूफ भाई लड़ेंगे, तब-तब तू इन्हें याद दिलायगा कि तूफान की नाव के मुसाफ़िरों की पहली लड़ाई पानी के धोखे से है !'

हसन की आंखों में प्रकाश था, मानो जीवन का जाने कौन-सा नया अध्याय आज सामने खुलता चला जा रहा था। इमाम ने ही फिर कहा—'आज जो गुलामी को मिटाने का सब से बड़ा जंग नहीं छेड़ता, वह मजहब का दुश्मन है। असली गुलामी है कि हम सब उस जालिम के राज्य में भूखे हैं। हम उसके इसलिए दुश्मन नहीं कि उसकी चमड़ी गोरी है, क्यों कि वह सैकड़ों काले कुत्तों के गलों में पट्टे डाल कर हम पर लहसा रहा है, बल्कि इसलिए कि उसके तख्त में हीरे नहीं हैं, हमारे दूध मुंहे बच्चों की आंखे निकाल कर

उस पर जड़ दी गई हैं; और वे हमारी तरफ घूर रही हैं, हमें बुला रही हैं!'

रात हो गई थी। जुलूस ऐसा निकला था, जैसा आज तक आगरे में कभी नहीं निकला। पुलिस दबी-दबी-सी खड़ी थी। वह जब वार करना चाहती थी, उससे पहले ही इमाम ने उसे रोक दिया था। अमन की गुलामी को आज अज़ादी के एके के अमन ने हरा दिया था।

हसन चुपचाप खड़ा था। मोहसिन ने उसे हिला कर कहा—'इमामपाक कहां हैं, हसन?' हसन नहीं बोला। मोहसिन ने फिर कहा—'इमाम बुजुर्ग कहां हैं, हसन?

इसी समय इमाम ने प्रवेश किया। वह गम्भीर था। मोहसिन ने चिल्ला कर कहा—'इमामपाक, आप कहां चले गए थे?'

इमाम ने भर्राए स्वर से कहा—'बेटा, पुलिसवाले मुझे धमकाने के लिए कोतवाली पकड़ कर ले गए थे। कहते थे; मैंने कल दंगा करवा दिया होता। वह तो पुलिस थी, इसलिए लोग दब गए। वे कहते थे कि मैंने मस्जिद में से बगावत का नारा लगाया था उनके बादशाह के खिलाफ। खुदा के इबादत खाने की वजह से उन्होंने मुझे नहीं पकड़ा...।'

हसन ने दृढ़ हो कर कहा—'नहीं कहेंगे कि कल उनके होश फाख्ता थे। जालिम के घुटने कितने कमजोर हैं? उनकी दुकान का सौदा जाली सिक्कों के बल पर ही चलता है। दो आने का रुपया सोलह आने में चला कर रईस बनता है! उसके कोई खुदा नहीं, उसका मजहब लूट है!

इमाम ने हर्षित हो कर कहा—'क्यों दे दे वह आजादी? हम क्या उसके इकलौते बेटे हैं? और, वह मर कर भी ऐसी वसीयत कर जाय, इतनी भी उसमें इन्सानियत नहीं है। वह तो दरिन्दा है—अँग्रेज!'...

हसन और मोहसिन सुन रहे थे। उनका खून तड़प रहा था और इमाम कह रहा था—'क्यों कि उनमें ईमान की बू नहीं बची है।'

# पंच परमेश्वर

चन्दा ने दालान में खड़े हो कर आवाज देने के लिए मुंह खोला पर एकाएक साहस नहीं हुआ। कोठे के भीतर खांसने की आवाज आयी। अभी अंधेरा ही था। कड़ा के की सर्दी पड़ रही थी गधे भी भीतर की तरफ टाट बांध कर बनाई हुई छत के कान खड़े किये हुए बिल्कुल नीरव खड़े थे। खपरैल पर लाल-सी झलक थी, देख कर ही लगता था जैसे वे सब बहुत ठंढी हो गयी थी, जैसे स्वयं बर्फ हो। गली की दूसरी तरफ़ मस्जिद में मुल्ला ने अजान की बाँग दी। चन्दा कुछ देर खड़ा रहा, फिर उसने धीरे से कहा—भैया !

बिस्तर में कन्हाई कुलबुलाया, अपनी अच्छी वाली आंख को मींड़ा। उसे क्या मालुम न था ? फिर भी भारी गले से

पड़ा पड़ा बोला—'कौन है ?' और कहते में वह स्वयं रुक गया। नहीं जानता तो क्या रात को दरवाजे खुले छोड़ कर सोता ? उसे खूब पता था कि कल सूरज-नारायन चढ़े न चढ़े मगर चन्दा लगी भोर आ कर बिसूरेगा।

दोनों भाई असमंजस में थे। इसी समय चौधरी मुरली की बूढ़ी खांसी सड़क पर सुनाई दी। चन्दा की जान में जान आयी। चौधरी को बहुत सुबह ही उठ जाने की टेव थी। वास्तव में टेव फेव कुछ नहीं। दिन में हुक्का गड़गड़ाने से रात को ठसका सताता था और फिर उल्लू की तरह रात को जाग कर वह सुबह ही बुलबुल की तरह जग जाते और लठिया टनकाते सड़क से गली, गली से सड़क पर चक्कर मारते रहते।

इतनी भोर को जो कन्हाई का द्वार खुला देखा, और फिर एक आदमी भी, तो पुकार कर कहा— को है रे !

चन्दा को डूबते में सहारा मिला। लपक कर पैर पकड़ लिये।

'क्यों ? रोता क्यों है ?' चौधरी ने अचकचा कर पूछा, 'रम्पी कैसी है ?'

'कहां है, चौधरी दादा,' चन्दा ने रोते रोते हिचकी ले कर कहा—'रात को ही चल बसी।'

'और तू ने किसी को बुलाया भी नहीं ?'

चन्दा ने जवाब नहीं दिया। सिसकता रहा। गधे अपनी बेफिक्री से मस्ती के आलम में खड़े रहे। उनकी दृष्टि

में आदमी ने ही अपना नाम उन पर थोप कर, उनका असली नाम अपने पर लागू कर लिया था।

'ओह ! कहां है रे कन्हाई ?' चौधरी पंच ने अधिकार से कहा—'सुना तूने ? अब काहे की दुसमनी ? दुसमन तो चला गया। मट्टी से बैर करता सुहायेगा ?'

कन्हाई ने जल्दी-जल्दी धोती पर अपना रुई का पजामा चढ़ा कर, रुई का अंगरखा पहना और बिगड़ी आंख पर हाथ धर कर बाहर निकला आया। चौधरी ने फिर कहा—बिरादरी तो तब आयेगी जब घर का अपना पहले लहास को छुएगा बावले। चली गयी बेचारी। अब काहे का अलगाव है बेटा ? देख और क्या चाहिए ? तेरी मां थी न ?'

कन्हाई ने दो पग पीछे हट कर कहा—दादा ! जे क्या कही एक ही ? किसकी मां थी ? मेरी महतारी सब कुछ थी, छिनाल नहीं थी, समझे ? अब आया है ? देखा ? कैसा लाड़ला है ? नहीं आऊंगा समझे ? बीधों का छोरा हूं तो नहीं आऊंगा।

चौधरी ने शान्ति लाने के लिए कहा—हां-हां रे कन्हाई, तू ना बिरादरी की नाक बन गया। पंच मैं हूं कि तू ?

कन्हाई दबका। उसने कहा—'तो मैंने कुछ अगल बात कही हैं दादा ? उसने मेरे खिलाप क्या नहीं किया ? मैंने हड्डी हड्डी करके उसके चन्दा को ज्वान बना दिया। ताऊ मरे थे तब मेरे बाप की आंख फूट गयी थी जो घरेजा किया तो भाभी से ही और अपनी ब्याहता को छोड़ दिया। रिसा रिसा के मारा है मेरी मां को। वह तो मैं कहूं, मैंने फिर भी उसे अपनी

मां के बरोबर रखा। तुम तो सब अनजान बन गये ऐसे! घर छोड़ दिया। अपनी मेहनत के बल पै यह घर नया बनाया है। अपना गधा है। जब सपूती का सुलच्छना बड़ा हुआ तो कैसी आंखे फेर गयी? वह दिन क्या मैं भूल जाऊंगा?

चौधरी निरुत्तर हो गये। फिर भी कहा—पर बेटा तेरे बाप की बहू थी, यह तेरे बाप का ही बेटा है, तेरा भइया है, दस आदमी नाम धरेंगे। गधा लाद के बजार से दूकान के लिए सब्जी लाता है। आज वह न सही; अनजाना करके लगा दे कन्धा, तेरा जस तेरे हाथ है, कोई नहीं छूटता, अपनी अपनी करनी सब भोगते है ......

कन्हाई निरुत्तर हो गया। चन्दा ने उसके पैर पकड़ कर पांवों पर सिर रख दिया। और रोने लगा।

'मेरी लाज तो तुम्हारे हाथ है भैया! पार लगाओ, डुबादो। घर तोऽ तुम्हारा, मैं तोऽ तुम्हारा गधा। कान पकड़ के चाहे इधर करदो चाहे उधर, पर वह तो बेचारी मर गयी...

और उसकी आंखों का पानी कन्हाई के पैरों पर गर्म गर्म टपक गया। कन्हाई का हृदय एक बार भीतर ही भीतर घुमड़ आया।

दोनो ने बगल के घर में घुस कर देखा—रम्भी निर्जीव पड़ी थी। हल्की चादर से उसका शरीर ढँका हुआ था। न उसे ठंड लग रही थी, न भूख, न प्यास। कन्हाई का हृदय

एक बार रो उठा। इससे क्या बदला लेना? एक दिन सबका यही हाल होना है, उस दिन न घर है, न बार, बस मिट्टी में मिट्टी है......

और वह उसके पैरों पर सिर रख कर रो उठा—अम्मां...

रम्मी फुक गयी। कन्हाई ने अपने हाथ से आग दी। उसके पेट का जाया न सही, बाप का बड़ा बेटा तो वही था। बिरादरी के लोगों के मुंह से वाह वाह की आवाज निकल गयी। कारज ऐसा किया कि कुम्हारों में काहे को होता होगा! स्वयं चन्दा को भेज कर फूल गंगा में डलवा दिये। पाप कौन नहीं करता? मगर हम तो उसकी गत सुधार दें। बारह बामन हो गये। और जब कन्हाई लौट कर तेरहवें दिन अपने घर आया तो ऐसा लगा जैसे अब कुछ नहीं रहा। चन्दा गधा लेकर मिट्टी डालने गया था। यही आमदनी थी आज कल। कुछ बढ़ चढ़ कर ग्यारह आने रोज, सो मिट्टी के मोल पैसा आने पर मिट्टी के ही मोल चला जाता। गेहूं की जगह बाजरा चना सस्ता था। सब वही खाते थे और यही सब से अधिक सुलभ था। चन्दा के पास वास्तव में कुछ नहीं था। रम्पी ने अपना पति मरने पर देवर किया, देवर कि पुरानी गिरस्ती तोड़ दी क्यों कि वह चटोरी थी और जलन से सदा उसकी छाती फटती रहती। वह किसी के क्या काम आती? छोड़ा

तो है चन्दा ! उसके पास बस दो साठ साठ रुपयों के गधे ही तो हैं। पुराना अपना घर गिरवी रखा है और अब शायद छूट भी नहीं सकता। किराये का मकान लेके रह रही थी छल्लो!

कन्हाई का हृदय विक्षोभ से भर गया। भीतर कोठे में घुस कर एक आंख से ढूंढ़ कर आंखों पर हरा चश्मा लगा लिया, ताकि आंखों की खोट बाजार वाले न परख लें। पूछने पर कन्हाई कहता—'दुख रही हैं, दुख,' और जवानों से कहता—'स्कूल की लौंडियाँ देखने को पर्दा डाला है, पर्दा। सब सुनते और हंसते। उसके बारे में कई कहानियाँ थी कि वह एक प्रोफेसर के यहां नौकर था। जिसकी बीबी जवान थी और काम से जो चुराती थी। उसने कन्हाई से खाना पकाने को कहा तो कन्हाई ने अपनी नीची जाति का फायदा उठाने को धर्म की दुहाई दी। बीबी अंगरेज़ी पढ़ी लिखी थी। उसने एक नहीं मानी। तब वह नौकरी छोड़ आया। उसके बाद भटका-भटका कर सब्जी की दूकान की और वह चल निकली कि कन्हाई शौकिया ही एक दो गधे रखने लगा, बस्ती में लादने के लिए किराये पर चलाने लगा।

कन्हाई ऊब कर दूकान पर जा बैठा। दिन भर उसका जी नहीं लगा। आज उसे फिर से घर भरने की याद आने लगी। चन्दा बाईस वर्ष का हो गया। अचानक ही उसे उस पर दया भाव उत्पन्न होता हुआ दिखाई दिया। अब तो सचमुच बीच की फांस हट गयी थी। कन्हाई ने अपने पैसे से कारज किया था। हृदय की उद्वेलित अवस्था भीतर के

सन्तोष पर तैर उठा। कन्हाई दूकान बन्द करके घर लौट आया।

चन्दा के ब्याह के लिये कन्हाई ने आकाश-पाताल एक कर दिया। दिल बल्लियों उछलता था। चौधरी पंच मुरली के घर जा कर जब उसने किस्सा सुनाया तो पंच उछल उछल पड़े, खाँसी का ढेर लगा दिया। उनकी बहू ने बूढ़ी पलकें उठा कर देखा और गीत गाने के लिए तैयारी करने का वचन दे दिया! आज जैसे घर भर में हर एक वस्तु में आनन्द ही आनन्द था। चन्दा का घर साफ हो गया। एक ओर मटके सजा कर रख दिये गये। अब चंदा के बच्चे होंगे, वे दिवाली पर दिये बेचेंगे, बड़े होंगे तो चंदा मिट्टी लादने का काम छोड़ कर चाक सम्भालेगा और फिर हर फिरकन पर झटका खाकर कुल्हड़ पर कुल्हड़ उतर आयेगा। चौधरी के पीछे जो बाड़ा है उसी में भट्ठ लग जाएगा।.........

चंदा मस्त होकर गा रहा था। फागुन का सुलगता मास था। बरात बाहर गली में बैठ कर जीम रही थी। भीतर औरतें गालियाँ गा रही थीं—

मेरौ गरमी कौ मारौ खसम देखिकैं रह रह पलटा खाय..

नैकु लँहगा नीचौ करलै......

कन्हाई ने रंगीन फेंटा बांधा था। आज उसके पगों में स्फूर्ति थी दौड़ दौड़ कर इन्तजाम कर रहा था। चारों

और कोलाहल पर प्रकाश की धुंधली किरनें तैर रहीं थीं। बरातियों के खच्चर जिन पर वे चढ़ कर आये थे एक ओर मूर्खों से चुपचाप खड़े थे, जैसे उन्हें मनुष्य की इस उन्मदिष्णु तृष्णा से कोई मतलब न था।

और इसी तरह एक दिन बहू ने आकर घूँघट की दो तहों में से देखते हुए कन्हाई के पैर छुए। चन्दा की गिरस्ती बस गयी। और कन्हाई बगल में अपने घर में लौट गया।

चन्दा की गाड़ी जब चलने से इन्कार करने लगी तभी उसने घर से बाहर क़दम रखा। पड़ोस की औरतें लुगाई के इस गुलाम को देख कर कानाफूसी करतीं, राह चलते इशारे करके हँसतीं और जब मिलतीं तो यही चर्चा चलती। चन्दा फूलो के सामने पराजित हो गया था। फूलो को देख कुम्हरिया कोई कह दे तो उसे आंखों में काजर लगाने की ज़रूरत है। वह तो पूरी जाटनी है। ज्वानी का किला है, लचकती जीभ है, फ़ौरन तर हो जाये। चन्दा की क्या बिसात? ऐसा बस्ती में बहुत कम हुआ। दिन में चन्दा और फूलो जोर जोर से बोलते हैं, ठहाके और किलकारियों को सुन कर पड़ोस के लोग दांतों तले उँगली दबाते हैं। कुन्जो जो प्रायः तीन ब्याहता ज्वान छोकरियों की मैया है (और तीनों लड़कियाँ गालियां गाने में उसका लोहा मानती हैं), वह तक चौंक जाती है कि सरम हया का तो नामों निसान ही उठ गया।

इधर चन्दा सुबह जाता, सरे सांझ लौटता तो थका मांदा और फूलो मुँह फुला कर बैठ जाती। पति पत्नि में

अक्सर पैसों के पीछे झगड़ा हो जाता। चन्दा कहता—तो मैं कोई राजा नहीं हूँ समझी? तो तू पाँय पसार कर बैठ और मैं दर दर मारा मारा फिरूं?

कहते कहते बीड़ी सुलगा लेता। फूलो कभी कभी रो देती। कहती—तो तुम मुझे ब्याह कर ही क्यों लाये थे! जमाने की औरतों के तन पर बस्तर हैं, गहने हैं, यहाँ खाने के लाले हैं......

चन्दा काट कर कहता—ओह हो! रानी बहू! बस्ती में सब ही ऐसे हैं। तू ही तो एक नहीं है? भैया की तरह सब ही तो नहीं। उनका पैसा धेली का हिसाब तो मिट्टी में गड़ता है, यहाँ पेट में गचकती है मेरी कमाई राँड़!

फूलो कह उठती—चलो रहने दो। माँजी माँग के परबीन गाहक तुम ही तो हो। जग के नाम धरे, अपना भी देखा? ब्याह तो मुफ्त हुआ था, नहीं तो तुम्हें कौन देता छोरी? मैत का चन्दन, लाला तू लगाले, और घर वालों के लगाले।

चन्दा विक्षुब्ध हो कर बोला—तो जा बैठ भैया के घर ही। रोकता हूँ। जमाने के मरद पड़े हैं। चली जा जहाँ जाना हो।

फूलो लजा कर कहती—अरे धीरे बोलो, धीरे, तुम्हें तो हया-सरम कुछ भी नहीं। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?

चन्दा हंस देता। और रोज रोज की बात या तो रोने

में समाप्त होती या हँसने में और दोनों काफ़ी देर तक एक दूसरे से बात नहीं करते लेकिन बारह बजे रात को अपने आप फिर दोस्ती हो जाती। चन्दा द्विविधा में पड़ा रहा। किन्तु कन्हाई से एक भी बात नहीं कही। मन ही मन उसके वैभव को देख कर ईर्ष्या करता। कन्हाई ने एक और गधा खरीद लिया।

उस दिन जब वह सुबह चन्दा को घर पर समझ कर खबर देने आया, चन्दा तो था नहीं, आंगन के कोने में पसीने से लथपथ अस्तव्यस्त कपड़ों में प्राय: खुली फूलो नाज पीस रही थी। कन्हाई ने देखा और देखता रह गया। फूलो ने मुड़ कर देखा और अपना घूँघट काढ़ लिया। वक्षस्थल फिर भी जल्दी में अच्छी तरह नहीं ढँक सकी।

कन्हाई पौरी में आ गया। और फिर पूछ कर लौट आया। चन्दा ने गधा खरीदने की बात सुनी और अपनी परवशता के अवरोध में फूलो से फिर लड़ बैठा। फूलो देर तक रोती रही।

प्राय: एक सप्ताह बीत गया। चन्दा का मकानदार उस दिन किराया वसूल करने आया था। चन्दा ने उसे ला कर आंगन में खाट पर बिठा कर उसकी खुशामद में काफी समय लगा दिया। फूलो कुछ देर प्रतीक्षा करती रही। फिर ऊब कर बाहर सड़क के नल से डोल भर कर कन्हाई के घर में घुस गयी। मालूम ही था कि कन्हाई उस समय दूकान पर रहता है घर पर नहीं।

गरीबों के घर में गुसल खाने नहीं रहते। ऊपर छत पर नहाने से बाबू लोगों के लड़के छिप कर अपने ऊंचे ऊँचे घरों से देख लेते थे, अतः वह आंगन के एक कोने में बैठ कर नहाने लगी। जूँए तो फिर भी बीन लेगी। जब तक जेठ बाहर हैं तब तक जल्दी जल्दी नहा ले। इसी समय न जाने कहाँ से कन्हाई आ घुसा। देखा और आँखों के सामने से बिजली कौंध गयी। फूलो घुटनों में सिर छिपा कर बैठ गयी। जब वह कपड़े पहन कर निकली कन्हाई बाहर पौरी में प्रतीक्षा कर रहा था। फूलो ने देखा और बरबस ही उसके होठों पर एक तरल मुस्कराहट फैल गयी। पौरी में उजाला अधिक न था, तिस पर कन्हाई की आँखों पर चश्मा चढ़ा हुआ था। वह थोड़ा ही देख सका किन्तु पुराना आदमी था। समझ काफ़ी दूर ले गयी। कहा—बहू! चन्दा कहाँ है?

उसके स्वर में बड़प्पन था, अधिकार था; डरने का कोई कारण शेष नहीं रहा। उसने सिर झुका कर घूँघट खींच लिया और पाँव के अँगूठे से भूमि कुरेदते हुए कहा—घर बैठे हैं।

कन्हाई ने फिर कहा—तो ले। लिए जा। बना लेना।

दो ककड़ी भीतर से लाकर दे दी हाथ में। फूलो ने घूँघट पकड़ कर उठाने वाली उँगलियों के बीच से देखा और मुस्कराती हुई ककड़ियों को डाल में रख कर चली गयी।

कन्हाई कुछ सोचता सा खड़ा रहा। चन्दा ने देखा और पूछा—यह कहाँ से ले आयी?

कन्हाई ने भी अपने आंगन से वह सन्देह भरा स्वर सुना। वह सांस रोक कर प्रतीक्षा में खड़ा रहा, देखें क्या कहती है? फूलो ने तिनक कर कहा—परसों दो आने दिये थे? तुम्हारी तरह मैं क्या चाट उड़ाती हूँ? दारू पीती हूँ? बच रहे थे सो कभी कभाद खाने को जी चाह ही आता है। सो ही ले आई।

'कहां? भैया की दूकान से?' चन्दा ने फिर उपेक्षा से पूछा।

'हाँ! नहीं तो?' फूलों ने धीरे से उत्तर दिया।

'राम राम' चन्दा का स्वर सुनाई दिया। 'भइया हैं ये? अकेले का खरच ही क्या है? इसलिए जोड़ जोड़ कर रखते हैं? कौन है इनका? न आगे हंसने को, न पीछे रोने को। दो ककड़ी तक नहीं दे सके जो फूटी आंख से देख कर दाम ले लिये?'

फूलो ने उत्तर नहीं दिया। कुछ बुरबुराई अवश्य जिसे कन्हाई नहीं सुन सका। उसके दांतो ने क्रोध से भीतर पड़ी जीभ को काट लिया। कैसी है यह दुनियां? मतलब के साथी हैं सब। इनका पेट तो नरक की आग है। बराबर डाले जाओ कभी नहीं बुझेगी। हाथ फैलाना सीखे हैं। कभी हाथ उल्टा करना नहीं आया।

फिर मन एक अजीब उलझन में पड़ गया। ब्याह हुए अभी तीन महीने भी नहीं हुए, बहू ने यह क्या रंग कर दिये। ठीक ही तो है। भूखा मारेगा तो क्यों मरेगी सो? उसके

तन बदन में जोस है तो दस जगह खायेगी, ऐसी कौन बात है लाला में जो सती हो जाये। जैसे फेरा, वैसा धरेजना। बैयर तो राखे से रहेगी।

एक कुटिलता उसके होठों पर झटका खा गयी।

बरसात की ऊदी घटाओं ने आकश घेर लिया। आँगन की कीच से पांव बचाता हुआ कन्हाई भीतर आकर बैठ गया। आज रोटी बनाने का मन नहीं कर रहा था। उठ कर दिया जला दिया और फिर चुपचाप उसे देखता रहा। दिया भी अपनी एक आंख से ही चारों ओर के अन्धकार को देख कर कांप रहा था जैसे बार बार उसकी पलकें झपक जाती हों। बाहर अन्धेरा छा चुका था। दूर पर सड़क भी नीरव थी। कीचड़ के कारण बहुत कम लोग इधर से उधर आ जा रहे थे।

एकाएक दालान में खड़ खड़ की कुछ आवाज़ हुई। कन्हाई ने शंका से पुकार कर कहा—को है रे?

एक मरियल कुत्ता लकड़ियों के पीछे से निकल कर चला गया। कन्हाई झेंप गया। उठ कर बाहर चला। निन्डू हलवाई की दूकान पर जाकर दूध पिया और लौट आया। अब कौन खाने के पीछे हाय हाय करता? अपना क्या है? जो खा लिया, सो ही ठीक है। गिरस्ती के चक्कर हैं।

कन्हाई बिस्तर पर लेट गया। कुछ ही देर बाद उसकी आँख किसी के खिलखिला कर हंसने की आवाज से टूट गई। इस व्याघात से उसका मन असंतोष से भर गया। निश्चय ही फूलो ही हंसी थी। और फिर उसने देखा, वह रात थी, घटाओं वाली रात, सनसनाती. आकाश से पृथ्वी तक फन फुफकारती रह रह कर लरजती। आंखों के सामने अप्रस्तुत का चित्र आया। चन्दा! फूलो! रात! बिस्तर और......

कन्हाई पशु की तरह एक बार आर्त्त स्वर से कराह उठा। बगल के घर की ध्वनियों ने उसे बेचैन कर दिया। अभी कुछ ही देर पहले पड़ोस की औरतों ने गा कर बन्द किया था—

ठंडुआ तो रोवे आधी राति—
सुपने में देखी कामिनी......

अपमान से कन्हाई का पुरुषत्व क्षण भर को विष धर सांप की तरह बदला लेने की स्पर्धा से भर गया। क्यों है वह आज ऐसा कि बिरादरी में लोग उसके पास पैसा रहने पर भी उसकी इज्जत नहीं करते? सब उसे देख कर हंसते हैं। और यह चन्दा! जो कुल दस बारह आने लाता है, उसी में गिरस्ती चलाता है, उसको न्योता भी है, बुलावा भी है, उसके गीत भी हैं...

क्योंकि वह बिजार नहीं है। उसके घर है, उसकी बात है, एक गिरस्त की बात। जिसमें दुनियादारी की समझ है। उसका कोई था ही नहीं जो उसका ब्याह कराता। जैसे वह तो आदमी ही न था। तभी भी सब अपने अपने में लगे थे,

आज भी नहीं। कन्हाई व्याकुल सा बिस्तर पर बैठ गया। आकाश में बादल गरज रहे थे। अभी उसकी आयु ही क्या थी? पैंतीसवां ही तो था। तब शहर में प्लेग फैला था, कन्हाई घुटनों चलता था। आज वह अकेला रह गया है। जैसे उसका कहीं कोई नहीं। उसके द्वार पर न सोना सरवन कुमार है न आंगन कोई लिपा पुता ही। खुद ही जब ऊब जाता है सोचता है घर साफ़ करे, किन्तु वह औरत नहीं है। लुगाई का एक काम करते करते ही आंखें फूट चलीं। चूल्हा फूँकना लोग का काम नहीं।

क्या नहीं किया उसने चन्दा के लिए? क्या था उसके घर? आज तो लाला छैला बन गये हैं? कैसी मांग पट्टी काढ़ के फेंटा बांधना आ गया है। बैठा के पास अधेली भी नहीं। बड़ा सलूना बांधा है।

उपेक्षा से उसके होंठ टेढ़े हो गये। कन्हाई को याद आया। उसके पास पैसा है। वह भी ब्याह करेगा। चन्दा तो उसे लूटे जा रहा है। उसके गधों की लीद तक उसकी अपनी नहीं। क्या करे वह उसका? आती है वह हरम्पा फूलो और ले जाती है बटोर कर। लेकिन कौन धन जमा कर लेगी? उसके चन्दा की रोजी ही क्या है? वह तो इज्जतदार है। परसों उनसे बिन्नू की जमानत दी है। दूकान है दूकान। कैसी लड़ती है चन्दा से दिन भर और रात को......

कन्हाई का ध्यान फूलो पर केन्द्रित हो गया। कांसे के हैं सब। बोरला तो, कड़े तो, गँगवारी तक। वह चांदी के

सकता है। फिर उसे वह दृश्य याद आया कि कैसे वह भीतर बिना खांसे घुस रहा था चन्दा के घर में और फूलो बैठी चक्की पीस रही थी। यौवन का वह गदराया स्वरूप याद आते ही कन्हाई हार कर लेट गया। किंतु वह क्यों अकेला रहे? चंदा को ही ऐसे सुख से रहने का ऐसा क्या हक है? जन्म हुआ तब से उसे कभी सुख चैन नहीं मिला। वह दूसरों के लिए कर कर के मरता गया और लोग बाग अपना अपना घर भरते गये। किसी ने यह भी पूछा कि भइया कन्हाई! तेरे भी कुछ सुख दुख हैं? कोई नहीं। सब अपने अपने मतलब के।

कन्हाई का चंदा के प्रति विद्वेष मुखर हो गया। अन्तर्ज्ञान ही विरोध जाग उठा। कल उसके बच्चे होंगे, तो क्या मेरा नाम चलेगा? बूढ़ा हो जाऊंगा तो खाट की अजमान तक सामने कोई नहीं आयेगा। अपने फिर भी अपने हैं, पराया तो पराया ही रहेगा...

बादल आपस में टकरा गये। घोर वर्षा होने लगी। कन्हाई तड़पता सा करवटें बदलता रहा। सामने अंधकार में फूलो आकर खड़ी हो गई। पुरानी घृणा ने फिर आघात किया। वह स्वयं ऐसी है नागिन। जेठ से आंख मिला के बात करना क्या खेल है? कैसी आती है बात बात पर बड़ी रुठली। बाप के घर में उसके कुछ है नहीं, नहीं तो पीहर भाग भाग जाती। बहू रखना भी आसान काम नहीं है। कहीं गधे ढो के आराम नहीं किये जाते। मैं ऐसे कब तक दोनों के समझौते कर करता फिरूँ। चन्दा भी कोई आदमी में आदमी है?

फिर वह मुस्करा उठा ।

कौन नहीं जानता चन्दा लुगपिटा है । लुगाई की ठसक देखो, मालक तो गधा है । वह चमक चौदिस वाली, डबल बचा नहीं कि फौरन खोम्चावाला बुलाया और चाट उड़ा गयी।

मुझे क्या मालूम नहीं कि वह चन्दा से बचा बचा के खाती है, चोरी करती है ।

फिर वही चंचल आंखें अँधेरे में चमक उठीं । कन्हाई के सीने पर किसी ने कटारों की जोड़ी भोंक दी । असमान में जोर से बिजली कड़क उठी । अरे काम तो कांकर माटी के खाने वालों को सताता है, फिर दूध मलाई वालों की तो बात ही और है । चन्दा बेटा का गरूर तो देखो ! अरे तुझे भी देखूँगा । तेरी मैया ने मेरा घर तबाह किया था ।

कहीं दूर बिजली बड़ी जोर से कड़क कर गिरी । कन्हाई जागता रहा ।

भोर हो गयी लेकिन आकाश में बादल छाये रहे । एक सन्नाटा समस्त बस्ती में समान रूप से छहर रहा था । कभी कभी सड़क पर भूंकते कुत्तों के शोर से वह हल्की मगर घनी तह टूट जाती थी और जैसे जैसे स्वर पीछे खिचने लगते थे वही निस्तब्धता अपना दबाव डालने लगती थी । हवा ठण्डी थी हल्की हल्की बूंदाबांदी हो रही थी । समय काफी हो गया

था। दफ्तरों और नौकरियों पर जानेवाले सबेरे ही अन्धेरे में से ही अपनी तकदीर को कोसते जा चुके थे। सड़क पर भी गांवों की सी हल्की तन्द्रा छा रही थी। गली में चारों तरफ कीच ही कीच हो गयी थी। कन्हाई की आंख खुल गयी। उसने सुना आंगन में कोई औरत चल रही थी। बिछिया की हल्की आवाज उसके कानों में उतर कर दिल में समा गयी। वह एक-दम उठ बैठा। बाहर निकल कर देखा फूलो चुपचाप उसके गधों की लीद जमा कर रही थी। उसको देख कर उसके शरीर में नशा सा फैल गया। पास जाकर कहा—यह चोरी कर रही है बहू ?

फूलो ने घूंघट नहीं खींचा। मुंह उठा दिया। गेहुंए रंग में दो मांसल आंखें थीं जिनमें से रात का खुमार अभी भी बिल्कुल मिटा नहीं था। देखा, और धीरे से बोली—चोरी काहे की जेठजी। वे तो अन्धेरे ही लदाई लिये गधा लेकर चले गये। अब बरसात भी तो लग गयी है। जो हात लगे उसी को बटोर लूं। कंडे बना लूंगी, कुछ तो काम निकलेगा ही।

कन्हाई प्रसन्न हुआ किन्तु प्रगट नहीं होने दी उसने वह चञ्चलता। निरातुर स्वर से कहा—क्यों ? चन्दा गिरस्ती नहीं चला पाता ?

'अपना अपना भाग है जेठजी। इसमें कोई क्या करे ? मरद जिसका जोग होगा लुगाई उसी की पाँय पै पाँय धरके बैठेगी।'

'तुझे बड़ा दुख है बहू !' यह प्रश्न न होकर एक वक्तव्य के रूप में इतनी निश्चयात्मक ध्वनि में कन्हाई के मुख से

निकला जैसे उसे स्वयं इस पर पूरा विश्वास हो और वह अपनी बात को अब पीछे नहीं लेगा। फूलो की आँखों में पानी भर आया। उसने मुँह फेर कर आंखें पोंछ लीं। कन्हाई ने उससे कहा—जो चाहे मांग लिया कर मुझसे। लाज न करियो। अपना ही घर समझ। चन्दा तो निखट्टू है, निरा बुद्धू; समझी? तेरा ही है सब कुछ, खा, पी, मेरा और कौन है?

'ब्याह क्यों नहीं कर लेते?' फूलो ने टोक कर पूछा।

'ब्याह?' कन्हाई ने ऊपर देख कर कहा—ब्याह करके क्या होगा मेरे तो परमात्मा ने सब दिया। तू फिकर न कर। मेरे रहते कोई तेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता। यहीं रह तो भी डर नहीं। कन्हाई का नाम बिरादरी में एक है। तेरे लिए उसका सब कुछ हाजिर है।

फूलो ने आँख टेढ़ी करके कहा—बिरादरी क्या कहेगी? जात भाई क्या कहेंगे? मेरा बाप क्या कहेगा? और तुम्हारे भैया की कौन सुनेगा?' जैसे फूलो ने सात पेड़ एक ही बार एक ही बाण से बेधने की कड़ी शर्त सामने उपस्थित कर दी थी।

कन्हाई ने निडर होकर कहा—बिरादरी कुछ नहीं कर सकती। हुक्का पानी बन्द करेंगे तो जात भाई देखेंगे कि कन्हाई बीड़ी सिगरेट पियेगा। तेरे बाप को क्या मतलब? वह तो एक बार पैर पूज चुका। और चन्दा की हैसियत ही क्या कि मेरे सामने खड़ा हो? तुझमें हिम्मत होनी चाहिए।

फूलो ने अविश्वास से पूछा—दगा तो नहीं दोगे? मैं कहीं की भी नहीं रहूंगी?

कन्हाई ने हाथ पकड़ कर कहा—सौगन्ध है गंगाजली की। परजापती का बेटा हूं तो धोखा नहीं दूंगा। आज से तू मेरी है। यह घर अब तेरा है। उस भिखारी से तेरा कोई नाता नहीं रहा। रह, हुकूमत कर। मैं चन्दा नहीं हूं जो मिट्टी डालते में बात बात पर बाबू लोगों के जूते खाऊं और हंस के चुप रह जाऊं। लौट के तो नहीं भागेगी?

'सौगन्ध है, मेरे एक बालक न हो जो तुम्हें छोड़-कर जाऊं।'

कन्हाई ने आनन्द के आवेश में उसका हाथ जोर से दाब दिया और कोठे में घुस कर द्वार बन्द कर लिया। बूंदें फिर पड़ने लगी थीं। आसमान साफ होने का नाम ही न लेता था जैसे पृथ्वी चारों ओर से घनी उसासों पर उसासें छोड़ रही थी।

बिजली की तरह बात बस्ती के वातावरण पर कौंध गयी। चन्दा ने जब लौट कर घर खाली देखा और देखा कि चूल्हा बिलकुल ठण्डा पड़ा है तब उसका माथा ठनका। सोचा शायद पीहर चली गयी है। बिना किसी से कहे अपनी सुसराल चल पड़ा। दो दिन बाद जब वहां से लौटा तो पग भारी थे, हृदय में घृणा और क्रोध की भीषण आग लग रही थी। इधर कुंजो ने आते ही खबर दी—लाला! कहां चले गये थे रूठ-कर? बहू बिचारी किसके जिम्मे छोड़ गये थे? लाचार कन्हाई

ने दया की और बिचारी को दो टूक खाने का तो सिल-सिला लगा !

चन्दा के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी। सीधे जाकर कन्हाई के आंगन में जा बैठा। फूलो ने भीतर से देख-कर कहा—क्यों आये हो ?

'क्यों आया हूँ ?' चन्दा ने तड़प कर कहा—हरामजादी ! यहां आ गयी तू और मैं तेरे पीछे जहान ढूंढ़ता फिरा ?

कन्हाई घर पर था नहीं। दूकान गया था, फूलो ने भीतर से ही कहा—फिर आना, जब वे आजायें, और नहीं लोग कहेंगे दिन दहाड़े पराये मरद घर में बैठे हैं।

चन्दा के मुँह की आवाज मुंह में ही रह गई। क्षण-भर वह वज्राहत सा किंकर्तव्यविमूढ़ कुछ भी नहीं समझ सका। फिर स्वस्थ होकर कहा— अब चल, यहां क्या कर रही है ? रोटी सेंक दे।

फूलो निर्लज्जता से हँसी, कहा—अब मैं तुम्हारी नहीं हूं समझे ? जब तुम्हारे भैया लौट आयें तो उनसे बात करना।

चन्दा नहीं उठा। कन्हाई के घुसते ही फिर लड़ाई शुरू हो गयी। जब जूता पैजार तक हो गयी तब और कोई चारा न समझकर फूलो घूंघट काढ़ के दोनों के बीच में आकर खड़ी हो गयी। उस समय काफी शोरगुल सुन कर कितने ही बस्ती के बड़े छोटे एकत्रित हो गये। बच्चों ने व्यर्थ ही युद्ध का वातावरण लाने को खूब हल्ला किया। कन्हाई और चन्दा दोनों छूट छूट कर एक दूसरे पर झपटते थे। चन्दा जवान था इसी

से लोग भय से उसे पकड़ लेते थे और स्वाभाविक ही था उसका अधिक क्रोधित होना। इसी बीच में कन्हाई दो एक मार जाता था। इस बीच बचाव की हरकत में चंदा काफी पिट गया क्योंकि एक चोट भी दस के बीच में बीस चोटों के बराबर है। अपमान से विह्वल होकर चंदा रोने लगा। आंसू देख कर यद्यपि लोगों के हृदय में दया भाव उत्पन्न हुआ किन्तु स्त्रियों ने ठिठोली कर दी। कैसा बालिक है जो जार जार रो रहा है?

चन्दा लौट आकर बड़ी देर तक घर पर रोता रहा। सब जानते थे। किसी ने कन्हाई से कुछ नहीं कहा। क्या सबकी आंखें फूट गयी हैं? बिरादरी के कान फूट गये हैं? उठा और चौधरी पंच मुरली के घर की चौखट पर जा बैठा। चौधरी कहीं से सफेदी करके लौटे थे। हाथ पैरों और गालों पर सफेद सफेद छींटे दिखाई दे रहे थे। सुन तो चुके ही थे। फिर भी कहा—कह चन्दा कैसे आया है?

चन्दा का गला रुँध गया। लाज ने जैसे उँगलियां गड़ा दीं। कैसे कहे कि उसके जीते जागते लुगाई दूसरे के जा बैठी? वह मरद ही क्या जिसमें इतना भी जोर नहीं कि औरत उसके कहने पर चले? मरद तो वह कि निगाहों पर बैयर के पांव उठें। पलकें थम जायें तो उठा कदम थम जाये। किन्तु अव-रोध अधिक नहीं टिका। दौड़ कर चौधरी के पांव पकड़ लिये। चौधरी ने संदिग्ध दृष्टि से देख कर गम्भीरता से पीढ़े पर बैठते

हुए हुक्का सम्भाला और पूछा—तो कुछ कहेगा भी कि रोये ही जाएगा ? क्या आफत टूट पड़ी ऐसी ?

चन्दा ने कहा—दादा, नाक कट गयी। इज्जत धूल में मिल गयी।

चौधरी ने विस्मय से कहा—अरे ! सो कैसे ?

'बहू तो भैया के जा बैठी।'

चौधरी को झटका लगा। पूछा—'सच ? यह कैसे ?'

'क्या बताऊँ ? गरीब आदमी हूँ। सुबह ही निकल जाता हूँ। संझा को आता हूँ। दिन भर वह घर में रहती है, भैया रहते हैं, फुसला लिया बिचारी को। मिठाई विठाई खिलाते रहे। अब, दादा, गिरस्ती सम्भालने वाले का ही हाथ तंग होता है। अकेले बिजार तो सड़क पर ही खाने को पा जाते हैं। सो चटाने को पैसे की क्या कमी ? गरीबी तो तब है जब रोज का बोझ है ?'

चौधरी ने सुना। सिर हिलाया। कहा कुछ नहीं। चन्दा ने फिर कहा—दादा, पंच परमेसुरों के रहते परजापतियों में ये अधरम होगा ?

'पञ्चायत बुलायेगा ?'चौधरी ने शंका से पूछा। 'बड़ा खरचा होगा और हारने पर दण्ड भुगतान करनी पड़ेगी।'

'हारूंगा कैसे चौधरी ? मैं क्या गलत कह रहा हूँ ? मेरी लुगाई है, ब्याहता है, मैं तो उल्टे रुपये लूंगा। मेरे जीते जी दूसरे के पास जा बैठी है। और छोटे की बड़े भाई के घर

बैठने की कोई रीत नहीं बड़े की छोटे के यहाँ बैठने की तो रीत भी है। कोई दिल्लगी है ?' चन्दा ने सिर उठा कर कहा। चौधरी ने फिर भी उत्तर नहीं दिया। उन्होंने गम्भीरता से कहा—'तेरी मर्जी।'

चन्दा उठ चला। राह मे याद आया। खरचे को पैसा कहाँ है। दो महीने का तो घर का ही किराया चढ़ा हुआ है। अब तक तो कैसे भी खुशामद से काम चल गया, लेकिन अब के कैसे भी मकानदार राजी नहीं होगा। कहेगा दिल्लगी हो गयी। खैर तब ब्याह की बात थी, धेली-पैसे की बात, हाथ रहा न रहा, अब उसके पास तो कुछ था नहीं। वही मजूरी के दस बारह आने आये जो, सो उन्हीं में चार आने खायेगा बाकी बचायेगा, लेकिन उससे भी कितने दिन काम चलेगा ? ऐसा क्या बच जायेगा ? फिर विचार आया अभी रुपया लगा हूँगा। एक गधा बेच दूं। पञ्चायत भी हो जावेगी। किराया भी चुक जायगा और फिर तो कन्हाई को रुपये भरने ही पड़ेंगे। फिर फूलो भी नहीं रहेगी। अपने मस्ती का खरच चलेगा। और जो फूलो लौटी तो कन्हाई दण्ड भुगतान देगा और अब के फूलो से भी नौकरी करवा लूँगा। तब घर ठीक से चल पड़ेगा। अबके तो हरामज़ादी को जूते की नोंक के नीचे रखूँगा, ऐसा कि याद करे। मैंने ही दुलार कर करके बिगाड़ दिया उसे।

उधर कुंजी और अनेक स्त्रियों में ठिठोली हो रही थी। लजमन्ती ने कहा—ऐ भैना, एक आंख का कर बैठी। दो आंखों से ऐसी क्या दुसमनी निकली ?

'कलदार की ठसक है बेटी, कलदार की', चम्पी ने कहा और हाथ मटकाये। कुञ्जो अपने ग्यारहवें बच्चे को बैठी दूध पिला रही थी जो अपने सबसे बड़े भाई से लगभग सत्ताईस बरस छोटा था। बैठे ही बैठे मुस्कराई और गा उठी—

जैसे देवरिया मलूक तैसे होते बालमाउ—हँसी-दिल्लगी के इस व्यापार में एक कौतूहल था, एक ईर्ष्या की अभिव्यञ्जना थी। सब जानते थे फूलो बदमास थी, लेकिन चन्दा के गरीब होने के कारण किसी बात पर पक्का निर्णय नहीं ठहरता था।

शाम हो चुकी थी। अँधेरा गहरा हो गया था। बस्ती अँधेरे में डूब गयी थी। किसी किसी के ओसारे में दिया जल रहा था। औरत और मरद आंगनों में बैठे बात कर रहे थे, हुक्का पी रहे थे। औरतें रोटी बना चुकी थीं। मरद खा चुके थे। अब रात हो गयी। दुनिया की रोशनी सूरज है। वही चला गया तो फिर रात से होड़ किसलिए? कैसे हुआ यह? रासन, फलाने का ब्याह, फलाने का दहेज आदि अनेक बातें हैं जिन पर वे बहस करते हैं और कच्चे मकानों में चुपचाप सो जाते हैं। उनके गधे चुप खड़े रहते हैं, कभी सोते हैं, कभी जागते हैं, उनके सोने जागने का भेद भी अधिक स्पष्ट नहीं।

चौधरी पक्ष ने कन्हाई के घर में प्रवेश किया। उस समय कन्हाई कोठे से बाहर निकल रहा था। फौरन आगे बढ़ कर कहा—आओ दादा, आओ।

पीढ़ा डाल दिया। हुक्का भर कर फूलो पास में ही घूँघट काढ़ कर धर गयी। चौधरी ने टेढ़ी आंख से उसका वह गदराया

आकार देखा और हुक्के में कश मारते हुए वे सब समझ गये। कन्हाई ने इधर उधर की बातें कीं। फिर उठा कर भीतर से एक चीज़ लाया। चौधरी ने देखा। हँस कर कहा—अरे इसका क्या होगा?

किन्तु कन्हाई ने कहा—तो बात ही क्या है दादा? कौन पराये हो?

और खोल दी ठर्रे की बोतल। 'अब तो,' चौधरी ने कुल्हड़ में मुँह लगाते हुए कहा— मँहगी हो गयी है। हो गयी है न?

'दादा, लड़ाई है जे। कौन मँहगा नहीं हो गया है? मैं नहीं हुआ, कि तुम नहीं हुए? अब तो मौत का इतना खरचा नहीं जितना जिन्दगी का।'

दोनों हँसे। हल्का नशा चढ़ चुका था और अब खोपड़ी में घोड़े की सी टाप लगने ही वाली थी। ठर्रे की महक में कन्हाई ने पूछा—दादा, तुम्हारा ही भरोसा है?

चौधरी ने झूमते हुए कहा—'अरे 'काहे की फिकर है तुझे? कन्हाई ने हर्ष से कुल्हड़ फिर भर लिया और चौधरी के 'हाँ हाँ' करते भी उनके कुल्हड़ में आधी बोतल खाली कर दी। और उसके बाद चेतना के सत् पर वही अन्धकार छा गया जो बाहर एकाग्रचित होकर तड़प रहा था।

पंचायत बड़े जोर शोर से जुड़ी। चारों तरफ वही एक चर्चा थी। बस्ती के सारे मरद कुम्हार आकर इकट्ठे हो गये। चौधरी चौतरे पर आ बैठे। हुक्का हाथों हाथ घूमने लगा। चौधरी ने पहले कश लगाये और हुक्का सरका दिया। एक ओर कन्हाई खड़ा हुआ था। उसके शरीर पर सफेद अँगरखा, साफ धोती थी और सांझ होने पर भी आंखों का खोट छिपाने को हरा चश्मा लगा हुआ था। फूलो घूंघट काढ़े बैठी थी। दूसरी ओर चन्दा था। मैली धोती, मैली फितूरी और मैली ही हल्की सी नखदार टोपी मशीन से कटे बालों पर चिपक रही थी।

चौधरी ने गम्भीरता से पूछा—तुमने क्या किया?

चन्दा ने कहा—पंच परमेसुर सुनें। चौधरी महाराज ने पूछा है—मैंने क्या किया? सो कहता हूं। बड़े भैया ने छोटे की बहू घर डाल लीहै। वह उसकी बेटी के बराबर है।

चौधरी ने रोक कर कहा—सो हम में भेद नहीं है चन्दा। बड़ी जातों में बड़े की बहू मां समान है। हमारे तो यह कायदा नहीं। यह बामन-छत्री जात की बात है। हम तो नीच कहे गये हैं। और सुना?

चन्दा का पहला बाण पत्थर से टकराया, फलक टूट गया। शिकारी विह्वल हो गया। उसने फिर धनुष पर बाण निकाल कर चढ़ाया। कहा—मेरे जीते जी दूसरी ठौर जा बैठी है, मुझे हरजाना मिल जाना चाहिए।

चन्दा बैठ गया। पंचों के सिर हिले, कानाफूसी हुई कि कोलाहल से जगह भर गयी। चौधरी ने फिर कहा—कन्हाई, बोलो तुमने लड़की को घर कैसे डाल लिया ?

कन्हाई ने नम्रता से कहा—चौधरी महाराज न्याय करें। घर में भूखी नार आयी। मालिक रोटी तक नहीं जुटा सका। तब मैंने देखा घर की बैयर डगर डगर ठोकर खायेगी। सो कहा—रह, तेरा घर है। मुझे कौन छाती पर बांध के ले जाना है ?

चौधरी ने कहा—पंच सुनें। फूलो कहे कि कन्हाई ने ठीक कहा। क्या चन्दा के घर तुझे खाना नहीं मिलता था ?

फूलो ने स्वीकार किया। चौधरी ने कहा—पंच बतायें। लुगाई तब तक ही रहेगी जब तक मरद खाना देगा भूखी मरने को तो नहीं ?

'नहीं, पंचों ने एक स्वर उत्तर दिया।

कन्हाई ने फिर कहा—चन्दा के फूलो के बाप ने जब ठौर कर दी, तो चन्दा ने वादे के जेवर नहीं दिये।

चन्दा गरज कर बोला—यह झूठ है। मैंने कोई वादा-खिलापी नहीं की।

चौधरी ने रोक कर कहा—फूलो, बता कि किसने ठीक कहा ?

फूलो ने फिर इंगित से कन्हाई की बात को ठीक साबित किया।

चन्दा घृणा से विक्षुब्ध हो गया। चौधरी ने कहा— और तो बात साफ हो गयी। जैसे बड़े की छोटे ने की तैसे छोटे की बड़े ने की। जेवर नहीं दिये, वादाखिलाफी की। रोटी नहीं दी सो वह क्यों रहती? पंच बतायें किसका कसूर है?

पंच फिर परामर्श करने लगे।

चन्दा ने उठ कर कहा— पंच परमेसुर की दुहाई। चौधरी भगमान के औतार हैं। मैं गरीब हूँ; जैसी रूखी सूखी मैंने खायी, तैसी उसे खिलायी। घर गिरस्ती में मरद के पीछे लुगाई चलती है। बतायें मैंने क्या दोस किया?

फिर पंच विचार में पड़ गये। चौधरी ने सब शांत होने पर फिर कहा— चन्दा रुपये मागता है कि उसके जीते जी बहू ने दूसरी ठौर करली। अगर उसने दूसरा ब्याह करके फूलो को छोड़ा होता तो जब तक फूलो दूसरी ठौर नहीं कर लेती तब तक उसका महीना उसे बांधना पड़ता। सदा की रीत है कि चन्दा को रुपया मिलना चाहिए। पंचों का न्याय हो। भूखी मारी या न मारी, वह खुद गरीब है। बेटी बाप ने देते वखत क्यों नहीं सोचा। जैसा खुद खाया तैसा उसे खिलाया। लेकिन ब्याहता है उसकी फूलो। फूलो रजामन्द नहीं कि ब्याह

करके जनम भर भूखी मरे। वह ठौर छोड़ गयी। जो खाने को दे, जो पालन करे, वही भरतार। पंच कहें। रुपया लेने का चन्दा को हक है या नहीं?

फिर कोलाहल मच उठा। चौधरी ने तो जैसे हाथ धो लिये। उन्हें अब निर्णय को सिर्फ दुहरा कर सुना देना था। फूलो अभी तक चुप खड़ी थी। बाजी कमजोर पड़ रही थी। उसे यह असह्य था। इससे तो वह कुलटा साबित हो जायगी। बैठ गयी सो बुरा नहीं, पर यह रुपया देना तो भुगतान है। उसने भरी पंचायत में आगे बढ़ कर कहा—चौधरी भगवान हैं। पंच परमेसुर हैं। लुगाई मरद की है मगर जो मरद ही न हो, उसकी कोई लुगाई नहीं है।

सबने विस्मय से सुना। सच ठीक कहा था। ब्याह हो जाने से ही क्या? पुरुषार्थहीन पुरुष को कोई अधिकार नहीं कि वह स्त्री को दासी बना कर रखे।

पंचायत उठ गयी। चन्दा पर पच्चीस रुपये दंड लगाये गये जो रोष से उसने वहीं फेंक दिये और हार कर लौट आया। आज उसे कहीं मुंह तक दिखाने की जगह न थी। अब उसका कहीं ब्याह नहीं हो सकता। भरी पचायत में फूलो ने उसकी टोपी उछाल कर पैरों तले कुचल दी थी। यह ऐसी बात थी जिसमें फूलो की बात अंतिम निर्णय थी।

कन्हाई फूलो को लेकर लौट आया और रात को कन्हाई और चौधरी ने फिर से ठर्रे की बोतल खोली और दोनों मस्त होकर पीने लगे। जब बहुत रात हो गयी तब चौधरी लड़—

खड़ाते हुए चले गये। फूलो चुपचाप बैठी थी। वह न जाने क्या क्या सोच रही थी। और कन्हाई नशे से आंगन में औंधा पड़ा था।

दूसरे दिन शाम को मकानदार ने चन्दा का किवाड़ खटखटाया। चन्दा ने चुपचाप उसके हाथ पर किराया रख दिया। वह झूम रहा था। उसके मुँह से दारू की बू आ रही थी। मकानदार चुपचाप लौट गया।

चन्दा लौट कर फिर पीने लगा और बकने लगा— बेटा कन्हाई, छिनाल तो छिनाल ही रहेगी। कुत्ते की पूँछ क्या सीधी हुई है? तेरी बहार भी के दिन की है? बेटा अब गिरस्ती पड़ी है, अब दो दिन बाद तेरे भी खरचे देखूंगा। हाथ पांव ढीले हो जाएँगे, पर मैं करूंगा मजे बेटा! चटाने को तो मेरे पास भी पैसे हो जाएँगे, समझा? भगवान समझेगा तुमसे, पापी!

और वह देर तक बकता रहा, जोर जोर से सुना कर बकता रहा। कन्हाई ने सुना और संदिग्ध दृष्टि से फूलो की ओर देखा। उसका हृदय भीतर ही भीतर काँप उठा। फूलो समझ गयी चूनर के कोने में बंधे बीस रुपये खोल लिये। पांच पंचायत में लग गये। बीसों रुपये आंगन में खड़े होकर

चन्दा के आंगन में बीच की जैर पर से फेंक दिये और कहा—भूखा मत मर। तेरे धन से सुरग नहीं जाऊँगी। समझा? ऐसे चराने को बड़ा मक्खी का छत्ता लगा रखा है न?

कन्हाई ने सुना, रुपये चन्दा के आंगन में खन्न करके गिरे और बिखर गये, किन्तु चन्दा उस समय नशे में बेहोश पड़ा था। उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ा।

फूलो आगे बढ़ आयी, गर्व से कन्हाई की ओर देखा और एक चंचल हँसी बरबस ही अंग अंग को गुदगुदाती उसके होठों पर कांप गयी। कन्हाई ने सिर झुका दिया। उसने मन ही मन अनुभव किया फूलो बहुत जवान थी और वह भाटे पर था।

# प्रवासी

बरसात की झड़ी का वेग आसमान से उतर कर फुलवाड़ी में व्याप गया। चार-चार सौ बरस पुराने, ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के पत्ते धुल गये। सन्ध्या की सुनहरी किरणें उन पर झलमलातीं, और फिर छोटी नदी की सतह पर फिसलने लगतीं।

यौवन के तीसरे पहर में गोपालन आज कुछ देख रहा था। आयु के इस शुष्क रेगिस्तान में उसकी सारी तरलता सूख चुकी थी। अनेक युवतियाँ आ-आ कर पनघट पर पानी भरती रहीं। वे हँस कर बात करतीं, खड़ी-खड़ी अँगड़ाई लेतीं, और फिर सिर पर दो-दो, तीन-तीन घड़े रख ठुमकती, लचकती चली जातीं। उनका निखरा हुआ यौवन दरिद्रता में भी छिप न पाता।

गोपालन को ये स्त्रियाँ देखने में मोहक लगतीं। उसके प्रांत की स्त्रियों से अधिक सुन्दर थीं। किन्तु कभी उसने यह विचार प्रगट नहीं होने दिया। उत्तर भारत में आकर वह सदा अकेला रहा है। उसके मन ने जैसे कहीं भी अपनेपन का अनुभव नहीं किया।

आज वह इस सुन्दर प्रांत में अकेला पड़ा है। कोई उसका मित्र नहीं है। सब उसे परदेशी के रूप में देखते हैं। और वह स्वयं इस भावना का आदी हो गया है, क्योंकि वह यहाँ हिन्दी भाषा नहीं जानता।

मन्दिर प्राय: सूना हो गया। यहाँ उसने केवल भगवान की पूजा की है, पेट भरा है, और मन्दिर ही की भांति उसका जीवन भी एक श्रद्धा के भार को वहन करता चला जा रहा है। इस नीरव कोने में जैसे संसार निस्तब्ध हो चुका है, मनुष्य की सारी हलचल समाप्त हो चुकी है, और वह बिताये जा रहा है, बिताये जा रहा है ऐसी ज़िन्दगी, जो मन्दिर के पत्थरों की ही भाँति कठोर है, जिसमें परिवर्तन होता तो हर क्षण है मगर दिखाई कभी नहीं देता।

रात हो गई। आकाश में अगणित तारे छिटक गये। पूजा करके गोपालन सोने चला गया। मठ के स्वामी पहले ही सो गये थे।

आज से दो सौ वर्ष पहले किसी व्यापारी ने यहाँ किसी दक्षिणी ब्राह्मण को गुरू बनाया था। तभी से शिष्य

परम्परा चली आ रही है। गोपालन यहाँ पुजारी के रूप में है।

आँख खोल कर देखा, आकाश में एक बार जोर से प्रकाश की एक लीक काँपी, और अंधकार में विलीन हो गई छत पर पड़े-पड़े गोपालन ने एक बार फुलवाड़ी के पेड़ों की ओर देख कर हाथ जोड़े, और फिर आँखें बन्द कर लीं। व्यथा से उसका हृदय भर गया। यह जो एक तारा इस तरह टूटा है, ऐसे ही वह भी एक दिन समाप्त हो जायगा। आज भी क्या उसका जीवन निरर्थक नहीं? वह किसी का नहीं, कोई उसका नहीं। जैसे अपनी ही सत्ता में अपनी परिधि की समाप्ति है।

गोपालन के मुख से एक आह निकल गई। इतनी तो बीत चुकी। अब और है ही कितनी? ऐसे ही वह भी बीत जायगी। यहाँ क्या है? अनेक बार घंटे बजते हैं, अनेक बार पूजा होती है, अनेक बार भगवान के दर्शन करने आ कर 'उत्तरादी' (उत्तर के रहने वाले) 'महाराज' और 'स्वामी' कह-कह कर लौट जाते हैं। बात-बात पर दंडवत करते हैं, गन्दे रहते हैं, और धर्म-कर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते।

गोपालन मन-ही-मन हँस उठा। कौन-सा है वह धर्म, जिसके लिये मनुष्य-बली हो? 'कितने अच्छे हैं ये उत्तर के लोग, जो इतना स्नेह देते हैं! हमारे यहाँ तो लोग

आपस में ही एक दूसरे को खाने दौड़ते हैं। आडम्बर! आडम्बर! और कुछ नहीं। उँह! मुझे क्या? जब तक मानो तभी तक परमात्मा; जब न मानो, तो कुछ नहीं!'

वह मुस्कराया। हृदय में एक बार झोंका-सा लगा। दीपक की बत्ती हिलने लगी। वह व्याकुल हो उठा। उसे प्यास लग रही थी—प्यास वह जो अतीत की सारी कड़ुवाहट ले कर उसके गले में चटकने लगी। सूनापन सघन हो चला। गोपालन ने आँखों को बन्द करके उन पर हाथ रख लिया, जैसे वह बाहर का कुछ भी न देखना चाहता हो।

धीरे-धीरे उसे सारी बातें याद आने लगीं।...

युवक गोपालन एक ब्राह्मण का बेटा था। पिता वैदिक अचारण से अपने जीवन के ढाल पर उतरते चले जा रहे थे, जैसे एक दिन गोपालन के पितामह की छाया में वह जीवन के चढ़ाव पर चढ़े थे। उनकी पवित्रता गाँव भर में प्रसिद्ध थी। वृद्ध नयनाचारी प्रातःकाल ही उठ बैठते, और स्नान आदि से निवृत्त हो कर बारह तिलक लगा कर पूजा में प्रवृत्त हो जाते। सन्ध्या की झुकती बेला में जब लम्बे-लम्बे ताड़ के पेड़ों के पीछे आसमान लाल हो जाता, अद्भुत शिल्प से सज्जित गुम्बदों के पीछे एक मंदिर पर आभा फैल जाती, वह बैठे-बैठे घंटों 'कम्ब रामायण' गाया करते। और रात को जब विशाल मन्दिरों से घंटों और शंखों का नाद गाँव में उठता-

गिरता गूँजने लगता, तो वह अपने आपको नारायण की महा-महिमामयी शक्ति के चरणों पर डाल कर अपने आपको भूल जाते।

गोपाल अपने स्वस्थ और सुदृढ़ शरीर के कारण अपने को बहुत-कुछ समझता। वृद्ध नयनाचारी देखते, और मन-ही-मन पुत्र के उच्छृंखल यौवन को देख कर मुस्कराते, किन्तु ऊपर से कभी विचलित होते न दीखते। वह उस परंपरा में पले थे, जिसमें पिता पिता ही नहीं एक गुरु भी होता है। उन्होंने ही उसे गुरु-मंत्र दिया था। आज गोपालन को आवश्यक धर्म-कर्म सब ज्ञात थे।

संसार समझता कि गोपालन का आचरण उसकी आयु को देखते हुए अत्यधिक धार्मिक था। किन्तु जब वह मन्दिर की आड़ में अँधेरा होने पर छिप कर खड़ा हो जाता, और गाँव में आ कर रहने वाले रिटायर्ड पोस्ट-मास्टर की पुत्री कोमल को देखता, तो उस समय वेद ब्रह्मा के मुख में लौट जाते, कर्म और धर्म पराजित हो कर उसके उठते हुये यौवन के सामने हाहाकार करने लगते। गोपालन मुग्ध हो जाता।

ऐसे ही अनेक दिन बीत गये। गोपालन ने कभी अपने मुँह से कोमल से कुछ नहीं कहा। किन्तु सुन्दरी कोमल जानती थी कि तपे हुए ताँबे के वर्ण का यह पुजारी केवल पत्थर के देवता का उपासक नहीं है, वरन् उसके भीतर एक हृदय भी है,जिसकी वह एकमात्र अधीश्वरी है। और गोपालन

का उदास जीवन आशाओं को ठोकर मार कर जगाने की चेष्टा करता, जो पीड़ा से एक बार आँखें खोलतीं, और फिर करवट बदल कर सो जातीं।

गोपालन का भाई वरदाचारी आज अनेक वर्षों से प्रवास में था। उसकी पत्नी राजम, जिसकी अवस्था ढल रही थी, अपने अधिकार की मादकता को सतृष्ण उन्माद से अपने हाथ से किसी तरह भी नहीं जाने देना चाहती थी। सब उसकी कर्कशता से परिचित थे। वह जब कभी अवसर मिलता, तो दूसरों के सामने अपने पति के गुणों का बखान करने लगती, और फिर रोती। किन्तु लोगों को शायद ही उसकी कोई बात छू पाती। वरदाचारी एक मस्त आदमी था, जो अपनी पत्नी को अपने योग्य न समझ कर उसे छोड़ कर कहीं अज्ञातवास कर रहा था। राजम माथे पर कुमकुम लगाती, गले में तिरुमंगल्यम पहनती। उसका सौभाग्य जैसे अक्षय था। यह अज्ञात सुहाग उसके नारी जीवन का एक विराट षड्यंत्र था। वृद्ध नयनाचारी को जब वह पर्व के दिनों दंडवत् करती, तो वृद्ध अपने दोनों हाथ उठा कर उसे आशीर्वाद देता। वह पिता था। वरदाचारी उसका बड़ा बेटा था।...

गोपालन ने करवट बदली। चारों तरफ अँधेरा था। उसने फिर आँखें बन्द कर लीं। अँधेरा नाचने लगा।

...वरदाचारी जब से घर छोड़ कर गया कभी लौट कर नहीं आया।

गोपालन नीचे गाँव से ऊपर सात मील चढ़ कर तिरुपथीमलय के विशाल श्रीनिवासन के मन्दिर में काम करता। राजम घर का काम-काज सँभालती। दो खेत पिता के थे। और चार खेत राजम के दहेज के थे, जो यद्यपि नयनाचारी ने बेटे के प्रतिदान में माँगे नहीं, किन्तु बेटी का अक्षुण्ण अधिकार बना देने के लिये गर्विता माँ ने अपने आप दे दिये थे। गोपालन निरपेक्ष सा अपना काम किये जाता।

एक दिन घर आ कर गोपालन ने देखा, पिता उदास-से बैठे थे। वह कुछ भी नहीं बोला। नहा कर उसने अपनी चोटी निचोड़ी, और खाने को बैठ गया। राजम ने उसकी ओर क्रोध से देखा, और ढेर-सा चावल सामने ला कर केले के पत्ते पर परोस दिया। गोपालन ने देखा, और समझा। वह जता रही थी कि मेरे ही कारण तुम लोगों को खाना मिलता है, नहीं तो तुम लोग कुत्तों की तरह भूखों मरते होते। गोपालन के हृदय में तीर-सा चुभा। किन्तु फिर भी वह चुपचाप खा कर उठ आया। पिता आज चुप थे। आज उनके मुख से रामायण की एक पंक्ति भी नहीं निकली।

गोपालन लौट चला। धीरे-धीरे फिर सात मील की सीढ़ियां चढ़ने लगा। इधर उधर अनेक यात्री इस समय पैदल और डोलियों में थके-मांदे उतर रहे थे।

एकाएक गोपालन ठिठक गया। कोमल भी ऊपर चढ़ रही थी।

वह अकेली थी, और ऐसा लगता था जैसे थक गई थी। गोपालन को प्रतीत हुआ, जैसे सचमुच ही राह बहुत लम्बी थी और वह स्वयं नहीं चढ़ सकता था। यात्री गण 'गोविंदा! गोविंदा!' पुकारते धीरे-धीरे उतरते चले जा रहे थे। गोपालन को लगा, जैसे वह नदी की बहती धारा थी, और ये दो पत्थर ऊपर की तरफ राह करके निकल जाना चाहते थे।

थोड़ी दूर चल कर कोमल थक कर एक सीढ़ी पर बैठ गई। गोपालन जब उसके पास पहुँचा, तो कोमल ने उसे पहचाना। मुस्करा उठी। गोपालन ने कहा—"थक गई हो?"

कोमल ने लजा कर उत्तर दिया—"थकेगा कौन नहीं?.. लेकिन तुम तो थके हुये नहीं दीखते!"

गोपालन को हर्ष हुआ। वह उस स्त्री के सामने एक पुरुष के रूप में खड़ा था, और इसे वह स्त्री अपने पूर्ण यौवन में स्वीकार कर रही थी। उसने उसकी ओर देखा और देखता रहा। कोमल ने संकोच से आँखें झुका लीं। गोपालन ने देखा, वह सुन्दर थी। आकाश में चाँदनी फूट-फूट कर फैल रही थी। सीढ़ी के दोनों ओर पहाड़ के हरे-हरे वृक्ष सन् सन् सन् कर रहे थे। और वह सीढ़ी जो सात मील लम्बी थी, जिसकी बिजली की बत्तियाँ आज

चांदनी के कारण नहीं जलीं थीं, साँप-सी कहीं करवट लेतीं, कहीं सीधी चलती, सफेद-सफेद-सी ऐसी लगती थीं, जैसे आकाश गंगा स्वर्ग से पृथ्वी को मिला रही हो। और सामने साक्षात मीनाक्षी बैठी थी, जिसका वड्ड्यारणाम [ सोने की पेटी ] अपने ऊपर विचित्र नक्काशी लिये उस मनोहर प्रकाश में दमदमा रहा था। गोपालन को क्षण भर अपनी दरिद्रता का आभास हुआ। ऐसी ही चीजों के लिये राज़म मरती थी, अपने पति से नित्य झगड़ती थी, और अन्त में लाचार हो कर वह घर छोड़ भाग गया था। कोयल की साड़ी के किनारे की ज़री झलमल-झलमल कर गोपालन के मन पर जाल बन कर छा गई। और वह विश्रांत सी उसके सामने बैठी थी। वह देख रहा था मन भर कर जिसे आज तक कोई भी नहीं भर पाया।

कोमल उठी, और चलने लगी। गोपालन भी साथ-साथ चलने लगा। कोमल ने ही कहा—"तो तुम मन्दिर में अर्चना करते हो?"

"हां! और यहीं रहता हूँ।" गोपालन ने धीरे से उत्तर दिया। फिर उसने रुक कर पूछा—'आप कहाँ जा रही हैं?"

'आप' सुन कर कोमल ने मुड़ कर उसकी ओर देखा। गोपालन का दिल न जाने कैसा होने लगा।

"मैं! मैं भी मन्दिर की ही ओर जा रही हूँ। पिता से मिलना है। उनको अपने होटल से फुर्सत कहाँ? पहले

पोस्टमास्टर थे न ! सो सुबह से शाम तक काम में लगे रहने की ऐसी आदत हो गई है कि छोड़े नहीं छूटती। आज वहीं सो जाऊँगी। 'वाहन' भी देख लूंगी। आज किसकी सवारी निकलेगी, आयङ्गार ? हनुमान की या गरुड़ की !"

गोपालन ने सोच कर उत्तर दिया—"आज तो शायद गरुड़ की निकलेगी।"

"गरुड़ की!" कोमल ने प्रसन्न हो कर कहा—"मुझे बड़ी अच्छी लगती है गरुड़ की सवारी।"

गोपालन को अफ़सोस हुआ। आज उसी ने शृंगार किया होता, तो कम-से-कम जता तो देता कि वह कितना निपुण था।

कोमल ने पूछा-"कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?"

गोपालन हँस दिया। बोला -"बच्चे ! कैसे बच्चे ?"

"क्यों ?" कोमल ने आश्चर्य से कहा-"विवाह ही नहीं हुआ क्या ?"

"नहीं!"

गोपलन को लगा, जैसे वे एक-दूसरे के और पास आ गये। उसे प्रतीत हुआ, जैसे कोमल ने यह प्रश्न उससे जान-बूझ कर किया था।

धीरे-धीरे ऊपर बसे पेशेवर भिखारियों के झोपड़े दिखाई देने लगे। कोमल फिर एक स्वच्छ शिला पर बैठ

गई। इस समय कोढ़ी और रोगी, असली और नकली, सब भीतर घुस कर सो रहे थे। चारों तरफ एकान्त था। अद्‌भुत नीरवता छा रही थी। गोपालन भी खड़ा हो गया।

"बैठ जाओ, आयंगार, बैठ जाओ! तुम तो, लगता है, जैसे थकना ही नहीं जानते!"

वह बैठ गया। देर तक दोनों बातें करते रहे।

जब वे भगवान् श्रीनिवास के मन्दिर के सामने पहुँचे, तो वाद्य-ध्वनि के साथ वाहन निकल रहे थे। कोमल चली गई। गोपालन मन की सारी ममता को दोनों हाथों से छाती पर दाब कर भीड़ की ओर देखता रह गया।

दूसरे दिन गोपालन ने देखा कि कुछ शहर के युवक मन्दिर में दर्शन करने आये हैं, उनमें से एक जरी का कीमती दुपट्टा गले में डाले है, और उसके काले हाथ पर सोने की एक घड़ी बँधी है। उसे पत्थरों पर नंगे पैर चलने में कष्ट होता है। वह अपने साथियों से कह रहा था—
"अजीब हालत है! मन्दिर के कारण तो इधर-उधर भी जूता पहन कर पहाड़ पर चलने की आज्ञा नहीं है। प्राचीन काल में वैसा होता था, तो ठीक था। मगर अब ऐसा क्यों?"

गोपालन ने घृणा से नाक सिकोड़ ली। ये लोग थोड़ी सी अँग्रेज़ी क्या पढ़ गये, धर्म-कर्म से हाथ ही धो बैठे।

महागरिमामय श्रीनिवास इन्हें अवश्य दंड देंगे। और वह अपने काम में लग गया।

दोपहर के समय जब वह मन्दिर से बाहर निकला, तो उसके पैर ठिठक गये। कोमल के पिता उसी पढ़े-लिखे युवक से खूब हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। और वह युवक, काफी पीता, 'इडली' खाता, उन्हें कोई बड़ा दिलचस्प किस्सा सुना रहा था। वह भी होटल के भीतर घुस गया। वृद्ध पोस्टमास्टर उस समय प्रसन्न थे। उनके मुख पर एक चमक काँप रही थी, और स्थूल शरीर फड़क रहा था। गोपालन ने उन्हें नमस्कार किया। वृद्ध ने हाथ उठा कर कहा—"अरे, गोपालन! तुम इतने दिन कहाँ रहे? इन्हें देखा? आओ, तुम्हारा इनसे परिचय करा दूँ!"

गोपालन ने उस युवक की ओर देखा, और एक आशंका उसके हृदय में उतर गई।

वृद्ध ने फिर कहा—"ये हैं वेंकटराजन! मदरास में पढ़ाई समाप्त कर दी है। एम० ए० हैं, एम० ए०! अब यहीं तिरुचानूर में रह कर अपनी जमींदारी संभालेंगे। आना विवाह में! जल्द ही हो जायगा। मेरी तो सारी चिन्ता मिट गई। कोमल के योग्य तो मुझे कोई दिखता ही नहीं था। अन्त में उसी ने इन्हें देखा। भाई, वक्त बदल गया है न! तभी। भगवान की मर्जी है, वर्ना हमारे समय में क्या यह सब होता था?"

गोपालन ने सुना। हाथ जोड़े। युवक ने हँस कर सिर हिला दिया, जैसे वह जमाई होने की लाज रख रहा था। गोपालन चला आया।

उस समय ब्रह्मचारी दिन में निकलने वाले वाहन के चारों ओर चार दलों में खड़े हो कर वेद पाठ कर रहे थे, और नाक के श्वास से एक ही समय बाँसुरी बजा रहे थे। जब एक दल ऋगवेद के कुछ मंत्र पढ़ चुकता था, तो दूसरा सामवेद प्रारम्भ करता था। और अंतराल में वेदों का वह गम्भीर घोष गूँज कर, पाषाणों से सहस्रों वर्ष पुराना गौरव टकरा कर, आकाश की ओर सहस्र रश्मियाँ बन कर फूट निकलता था।

गोपालन भीतर अंधकार में एक विशाल स्तम्भ के सहारे बैठ गया। सिर चक्कर खा रहा था। पैरों के नीचे से धरती खिसक रही थी। हृदय में उन्माद घूँसे मार-मार कर हंस उठता था।

धीरे-धीरे सांझ हो गई। गोपालन फिर भी वहीं पड़ा रहा। वृद्ध ताताचारी अन्त में हाथ में दीपक लेकर उसे ढूँढने निकल पड़ा। नित्य गोपालन दिन में अनेक बार उसके पास जाता, और कहता कि उसके अतिरिक्त मन्दिर में और कोई ऐसा न था जिसके प्रति उसकी श्रद्धा हो। ताताचारी वृद्ध हो गया था उसी मन्दिर की पूजा करते-करते, और उसे गोपालन से पुत्र का सा स्नेह हो गया था।

वृद्ध की छाती पर जैसे किसी ने प्रहार किया। गोपालन उस नीरव अंधकार में पड़ा हुआ था। वृद्ध ने दीपक रख दिया, और घुटनों के बल बैठ कर पुकारा—"गोपालन!"

गोपालन ने आंखें खोल दीं। वृद्ध ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—वत्स! क्या हुआ है तुझे? अंधेरे में क्यों पड़ा है?"

गोपालन ने कुछ नहीं कहा।

वृद्ध ने फिर कहा—"पुत्र, तुझे ऐसी क्या पीड़ा है? गोविन्द सब का मंगल करते हैं! मुझसे कह!"

गोपालन ने नीचे देखते हुए कहा—स्वामी, मुझसे एक भूल हुई!"

वृद्ध ने कहा—"क्या?"

गोपालन ने दबे स्वर में कहा—मैंने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया था! मैंने सोचा था कि कोमल से विवाह कर सकूँगा। मैं समझता था कि वह मुझसे प्रेम करती है।"

वृद्ध ने कहा—"तूने आकाश की ओर हाथ बढ़ाया, लेकिन यह नहीं देखा कि तेरे पैरों के नीचे जमीन तक नहीं है! पागल! कोमल से तू विवाह करेगा? मन्दिर का अर्चक एक पोस्टमास्टर की पुत्री से विवाह करेगा! घर में तेरे है क्या, जो तू ऐसी मूर्खतापूर्ण बात सोचने लगा? राजम क्या रहने देगी तुझे? क्या वृद्ध नयनाचारी को मालूम है

कि उसका बेटा वह काम करने लगा है, जो प्राचीन काल में राजा किया करते थे ? गोपालन, होश की बात कर, होश की ! ”

गोपालन ने गर्दन झुका ली। उसका गला रुँध गया। वह कुछ भी नहीं कह सका।

वृद्ध कहता गया—“मैं तेरा ब्याह करा दूँगा। विश्वनाथ की कन्या अब चौदह बरस की हो चली है। पिता भी अर्चक है। मुझे आशा है कि वह तुझे अवश्य अपना जमाई बना लेगा। उठ, चल ! बेकार अँधेरे में पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है ? ”

किन्तु गोपालन नहीं उठा।

वृद्ध देर तक समझाता रहा। किन्तु जब कोई नतीजा नहीं निकला, तो वह बड़बड़ता हुआ चला गया।

आधी रात के बाद जब गोपालन बाहर निकला, तो हाथ-पाँव टूट रहे थे। चाँदनी देख कर लगा, जैसे चारों तरफ आग लग रही हो। पुष्करिणी पर चन्द्रमा की शुभ्र किरणें खेल रही थीं। ऐसे ही दमयन्ती के विरह में नल बैठा रहा होगा। ऐसे ही उसके हृदय में भी आग लग रही होगी।

वह उन्मत्त हो उठा। रात अँगड़ाई ले रही थी। वृद्ध ताताचारी का उपहास अब भी उसके कानों में गूँज रहा था।

धीरे-धीरे भोर हो गई। ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी। उसने देखा, कोमल घड़ा लिये पुष्करिणी की ओर आ रही थी। गोपालन को देख कर वह मुस्कराई। फिर उसने कहा—"कहो, आयंगार! क्या रात सोये नहीं? तुम्हारा मुंह पीला क्यों पड़ गया है?"

गोपालन का श्वास भीतर घुट उठा। उसके मुँह से निकला—"तुम्हारा विवाह हो रहा है?"

"हाँ, हाँ! क्यों?" उसने हँस कर कहा—"आशीर्वाद दे रहे हो, आचारी? तिरचानूर में ही होगा। कोई दूर तो है नहीं। बस पहाड़ से उतरने की देर है।" और जैसे मन-ही-मन वह कल्पना के सुख में मस्त हो कर मुस्कराई। फिर एकाएक उसने सिर उठाया। देखा, गोपालन का मुख और भी उतर गया था। लगा, जैसे उसका हृदय असह्य यंत्रणा से छटपटा रहा हो।

"ओह!" उसके मुंह से निकल गया—तुमको हुआ क्या है, ब्राह्मण?"

गोपालन गुम-सुम खड़ा रहा। कोमल जैसे समझ गई। उसने विद्रूप से कहा—"आओगे विवाह में? वहाँ कई अर्चक होंगे! आना! खूब दक्षिणा मिलेगी! सच! मैं झूठ नहीं कहती!"

गोपालन के रोम-रोम पर किसी ने अंगारे फेर दिये। फिर भी वह प्रतिकार की भावना को प्रोत्साहन नहीं दे

सका। अपमान का घूँट उगल न सका। जैसे संसार को उस विष से बचाने के लिये वह उसे पी गया। उसके मुँह से केवल निकला—"आऊंगा, देवी ! तुम्हारे सौभाग्य को दृढ़ करने के लिये मैं मंत्र उच्चारण करने आऊँगा !"

कोमल ने स्नेह से उसकी ओर देखा। जैसे उसकी शंका दूर हो चुकी थी।

गोपालन खड़ा नहीं रह सका। वह लौट आया। भीतर आ कर एक स्तंभ के सहारे खड़ा हो गया। लगा, जैसे वह भी पाषाण की एक मूर्ति हो।...

...शहनाई बजने लगी। उसका तीव्र शब्द, मंगल का सूचक बन कर, कानों में गूँजने लगा। चारों ओर अगरबत्ती की मोहक गंध उठ रही थी। पके हुए केलों की गंध उठती और हवा के साथ कभी मंगल-कलशों पर जाकर थिरकती, कभी द्वार पर बंधे केले और आम के पत्तों को खड़खड़ा देती।

कोमल का विवाह हो रहा था।

गोपालन उदास-सा पास की धर्मशाला में बैठा शहनाई की आवाज़ सुन रहा था। जैसे यह समस्त वैभव, जो आँखों के सामने चल रहा है, इसमें उसका कुछ भी नहीं है, वह दलित और दयनीय-सा उठा कर किनारे रख दिया गया है कि अमृत की लहरें बहती जायँ, और वह केवल उनका कल-कल-शब्द सुनता रहे, बोले कुछ नहीं, छुए कुछ नहीं।

ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे होंगे। अग्नि में घी पड़ते ही लपटें हरहरा कर किलकिलाती उठती होंगी, और धुँये से कोमल की आँखें लाल पड़ गई होंगी। अनेक युवक-युवती अच्छे-अच्छे कपड़े पहने वहाँ इकट्ठे होंगे। किन्तु गोपालन तो वहाँ नहीं जा सकता। वहाँ जा कर होगा भी क्या?

पीछे से वृद्ध ताताचारी ने कंधे पर हाथ रख कर कहा—"अरे, गोपालन ! तू अभी यहीं है? चलेगा नहीं? वहाँ तो अनेक ब्राह्मणों को बुलाया गया है। जो जायगा, दक्षिणा पायेगा, कोई कम-ज्यादा नहीं। आखिर इस स्थान के वहीं तो पुराने जमींदार हैं। अब भले ही उतने नहीं रहे। एक समय था जब वही यहाँ के सबसे बड़े आदमी थे। तू तो तब था भी नहीं। तेरे बाबा इन्हीं के यहाँ अर्चक थे, इनके निजी मन्दिर में। और खाना बनाना तो उन्होंने और मेरे बड़े भाई ने इन्हीं के बाबा के यहाँ सीखा था। चल न!"

गोपालन ने कुछ नहीं कहा। वृद्ध ताताचारी के मुख पर एक बर्बरतापूर्ण हास्य खेल उठा। उसने कहा—"मूर्ख! तू मेरे पुत्र के समान है! क्यों बेकार की बातों में पड़ा है? तुझे शर्म नहीं आती कि प्रेम करने चला है?"

गोपालन ने फिर भी मौन रहना ही सबसे अच्छा समझा। जाने क्यों वह बहुत कुछ कहना चाह कर भी कुछ नहीं कह सका।

अनन्त हाहाकार की तरह बाजे की आवाजें उसके कानों में गूँजती रही, जैसे उसके प्राणों पर वज्रों का भयानक प्रहर हो रहा हो। वह दरिद्र था। कोमल एक धनी की पुत्री थी। सोचते-सोचते वह रो पड़ा।

घर पहुँचने पर राजम ने आँखों को कपाल पर चढ़ा कर, हाथ नचा कर कहा—"तुम तो जैसे 'वड़यवर' (रामनुजाचार्य्य) ही हो, जो तुम्हें कुछ भी चिंता नहीं! सभी तो गये थे'। कम-से-कम बीस-बीस रुपया हर एक को मिला है। लेकिन तुमने तो जाने की जरूरत ही नहीं समझी!" वह कह कर चुप हो गई। गोपालन के मुख पर असह्य व्यथा थी। लेकिन वह कुछ भी नहीं समझ सकी। अपार विस्मय से उसने देखा, वह सामने से हट गया। वह मुंह खोले ही खड़ी रह गई। अंत में उसने कुछ समझने का प्रयत्न किया। मुस्कराई। किन्तु इस योग की असम्भवता पर केवल हँस दी। नहीं, गोपालन कुछ भी हो, इतना मूर्ख नहीं हो सकता। राजम को फिर भी उससे कुछ स्नेह अवश्य था। पति के चले जाने पर वह उससे बात--बात पर चिढ़ती तो थी, किन्तु कुछ अपना अधिकार समझ कर ही तो उससे जो चाहे कह जाती थी। खाने के समय भी व्यंग्य कसती, किन्तु कभी उसे भूखा न उठने देती। ऐसा होता, तो रोती, लड़ती, और अपनी करके ही रहती। जब कुछ समझ में नहीं आया, तो वह फिर अपने काम में लग गई।

गोपालन की व्यथा बढ़ती ही गई। वह रात को बहुत कम सो पाता। कोमल सामने आ कर खड़ी हो जाती। संध्या समय वह देखता, पति-पत्नी घूमने जाते। कोमल का गर्व से उन्नत मस्तक देख कर, गोपालन का रहा-सहा धैर्य भी लुप्त हो जाता। मन-ही-मन वह तर्क करता, 'मैं क्या किसी से कुछ कम हूँ? अरे, अर्चक का बेटा अर्चक ही तो होगा! पहले क्या हमारी कम इज्जत थी? अब जो लोग अँग्रेजी पढ़-पढ़ कर धर्म को भूल केवल धन से मनुष्य के महत्व का माप करते हैं, वे ही हमरी उपेक्षा करते हैं। मैं अपना काम करता हूँ, खाता-पीता हूँ। किसी से माँगने तो नहीं जाता? और फिर अमीर-गरीब होना क्या किसी के हाथ की बात है?'

और सोचते-सोचते वह बड़बड़ा उठता—"बूढ़ा ताताचारी सठिया गया है! कहता है, वेंकटरामन् को रसोइये की जरूरत है, जा कर नौकरी कर ले! मैं कोमल की नौकरी करूँगा? मैं उसका सेवक बन कर रहूँगा?" और अपने आप से उसे घृणा हो आती। वह अँधेरे में मुँह छिपा लेता।...

...धीरे-धीरे बात आई-गई हो गई। गोपालन का उद्वेग कभी उठता, कभी गिरता। वह बहुत कम बात करता। मन्दिर में ही अधिकांश समय बिताता। कभी-कभी जाकर पिता से मिल आता।

नयनाचारी अवसर पाकर गोपालन के सामने राजम को बुला कर कहते—"बेटी, तेरे सामने तो यह बच्चा है। वरदाचारी इसे बहुत प्यार करता था। लेकिन ईश्वर की इच्छा! वह तो इसे छोड़ गया, अब तू ही इसकी माँ है। क्यों नहीं इसका भी ठिकाना कर देती? मैं तो अब बूढ़ा हुआ। देख जाऊँ इसका ठिकाना लगते भी, नहीं तो फिर... ।"

गोपालन ऊब जाता। देख जाने की इस तृष्णा में पिता के वात्सल्यपूर्ण हृदय की कितनी अथाह ममता थी, वह न समझ पाता। वृद्ध कभी अपनी बात के विरुद्ध कुछ भी न सुनते, क्योंकि उन्हें अपनी आयु का गर्व था। वह औरों को अपने सामने बच्चा समझते थे। 'अभी क्या जाने वे? जाने क्या-क्या सोचते हैं! ऋषि-मुनियों ने भी यही तथ्य निकाला है। और इस संसार में है ही क्या?'

राजम इसे तुरन्त स्वीकार कर लेती। वह दिल ही-दिल में सोचती, और प्रसन्न होती, आयेगी एक और। घर भर जायगा। गृहस्थी बढ़ जायगी। जीवन की यह नीरसता दूर हो जायगी। और सब से बड़ी बात यह होगी कि अधिक छोटों के होने पर वह अधिक बड़ी हो जायगी, और अधिकार जताने को उसको अधिक लोग मिल जायेंगे। और फिर वह काम-काज से मुक्त हो कर पूर्णतया स्वामिनी की तरह शासन कर सकेगी।

किन्तु प्राय: जैसे बात उठती, वैसे ही दब जाती। गोपालन की अरुचि अधिक बढ़ती जाती। और राजम अपने विचार दौड़ाती, किन्तु कहीं अन्त न मिलता। वह हार कर लड़ने लगती। वृद्ध कहते—"देख, मेरी आत्मा भटकेगी!" किन्तु गोपालन को यह विश्वास न होता कि आत्मा है भी या नहीं। एक दिन तो परमात्मा की सत्ता पर जो पहले अडिग विश्वास था, वह भी डाँवाडोल हो गया। उससे डर कर गोपालन ने एक हज़ार आठ बार गायत्री का महाजप किया। तब कहीं मन का विकार दूर हुआ।

इतने सब पर भी उदासी दूर न हुई, और जीवन का रेगिस्तान तरल होता न दीखा।

एक दिन गोपालन जब खाने बैठा, तो राजम ने कहा—" कुछ सुना तुमने ?"

गोपालन ने पूछा—"क्या ?"

" कोमल के बाप की अपने जमाई से खटपट हो गई! बाप ने कहा—'हम एक ही जगह रहते हैं। फिर लड़की यहाँ चली आया करे, तो क्या हर्ज है?' मगर वेंकटरामन् तो अँग्रेजी पढ़ा है। वह क्या बहू के बिना एक भी मिनिट रह सकता है? लड़ाई हो गई। कोमल ने बाप को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका! देखा, आज कल का ज़माना? जन्म भर पेट काट कर खिलाया, और यह नतीजा हुआ!" और फिर दो क्षण रुक कर राजम ने कहा—"लड़की भी

क्या कभी किसी की हुई है ? यह तो पूर्व जन्म का दंड होता है कि खिला-पिला कर लड़की को बड़ा करो, और पैर पूज दूसरे को दान कर दो !"

गोपालन ने राजम की बात की सत्यता स्वीकार की। लड़की फैशन में पड़ गई है। नहीं तो क्या बाप की अवहेलना करती ? किन्तु फिर दिमाग में खयाल आया, पति ही तो विवाह के बाद सब-कुछ है। फिर भी व्यक्तिगत विद्वेष ने कोई सामंजस्य स्थापित नहीं होने दिया। गोपालन यह नहीं सुनना चाहता था कि कोमल वेंकटरामन् से विवाह करके सुखी थी।

चार महिने बीत गये। गोपालन ने फिर एक बात सुनी। छाती के घावों पर मरहम-सा लगा। विद्वेष की धधकती आग बुझी। कितना निकृष्ट सुख था वह ! किन्तु यह वह उस समय अनुभव नहीं कर सका।

कोमल का पति बीमार था। इलाज हो रहा था, किन्तु कोई लाभ होता नहीं दिखता था। गोपालन की व्यथा फिर भड़क उठी।

अँधेरा हो गया। द्वार पर खटखटाहट सुन कर, कोमल ने आ कर खोल दिया। गोपालन उसे देख कर सकपका गया। उन दिनों कोमल के घर बहुत कम लोग जाते थे। किन्तु गोपालन को देख कर उसने तनिक भी विस्मय नहीं प्रकट किया, जैसे उसे मालूम था कि वह आयेगा।

उसने कहा—"कहो, आयंगार! कैसे कष्ट किया?"

गोपालन ने देखा, उसके मुख पर उदासी थी, और वह उद्विग्न-सी लग रही थी, जैसे भविष्य का भूत उसे रह-रह कर डरा देता हो, और वह आने वाली आपत्तियों को झेलने के लिये तैयार हो रही हो।

गोपालन ने कहा—"कुछ नहीं! हाल पूछने आया था।"

"अब तो वह अच्छे हैं पहले से। डाक्टर कहते हैं कि जल्द ही अच्छे हो जायँगे!"

गोपालन ने चलते-चलते कहा—"कभी आवश्यकता हो, तो मैं सेवा के लिये प्रस्तुत रहूँगा!"

"जानती हूँ! किन्तु विश्वास तो तब होगा, जब तुम प्रत्यक्ष कुछ कर दिखाओगे। समय पर बुलाऊँगी? पीछे तो न हटोगे?"

"नहीं!" गोपालन ने चलते-चलते कहा।

कोमल ने, "नमस्कार!" कह कर द्वार बन्द कर लिया।

गोपालन सोच रहा था चलते-चलते, 'मुझ से वह क्यों कुछ आशा करती है? यह मान करने और रूठने का अधिकार उसे दिया किसने? विश्वास करती है, फिर भी शंका की चाबुक मार कर आहत करने का भी प्रयत्न करती है!'

कुछ दिन बाद घर-घर में एक नई अफ़वाह फैल गई। गोपालन ने सुना। उसे विश्वास नहीं हुआ। मगर राजम छोड़ने वाली नहीं थी। उसने उसे देखते ही कहा—"अरे, सुना तुमने? कोमल का आदमी शराब पीने लगा है!"

"शराब!" गोपालन के मुँह से निकला। ऐसा लगा उसे जैसे आसमान फट गया हो, या जमीन खिसक गई हो।

"हाँ, हाँ, शराब, विलायती शराब! मैं तो पहले ही जानती थी। अब तो पोस्टमास्टर घमंड नहीं कर सकेगा!" और एक मुक्का सीने पर मारा, जैसे कोई कमाल किया हो, और मुस्कराती हुई गोपालन की ओर देखने लगी।

"क्यों पीता है वह शराब?" गोपालन ने धीरे से कहा— "ब्राह्मण का बेटा! एक पवित्र वंश में उत्पन्न हो कर ये चांडालों के-से कर्म! क्या ऐसे ही वह बाप का नाम चला रहा है? पोस्टमास्टर तो कहते थे कि वह पढ़ा लिखा है!"

"नाम तो तुम भी ऐसे ही चलाते! वह तो कहो कि अँग्रेज़ी का काला अक्षर तुम्हारे लिये भैंस बराबर है! वैसे भी क्या तुमने कभी बाप की बात मानी है? मैंने कितनी लड़कियाँ देखीं, लेकिन तुम्हारी टेक तो जैसे पत्थर की लकीर है!"

गोपालन ने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। दो क्षण बाद उसने कहा—"क्या यह बात सबको मालूम है ?"

"अरे बाप रे !" राजम ने हाथ बजा कर कहा—"मालूम कैसे न होगी ? क्या सब लोग जहर खा कर सो गये हैं ? वह पी-पी कर सड़क की नालियों में गिरता फिरे, और किसी को मालूम न हो !"

गोपालन का चित्त खट्टा हो गया। अतीव घृणा से उसके मुँह में भी एक कड़वाहट-सी फैल गई। यह क्या हुआ ? क्या बेचारी कोमल को कोई सुख बदा नहीं है ?

बाहर आकर सुना, बात सचमुच फैल गई थी। ब्राह्मण समाज ने एक मत से उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया था। फिर भी किसी को एकदम आगे बढ़ने का साहस नहीं होता था। वेंकटरामन को सब लोग धनी जो समझते थे। गोपालन विक्षुब्ध हो उठा।

करीब चार महीने और बीत गये। गोपालन के हृदय में एक तूफान सदा हाहाकार करता रहता। ऊपर से देखने में वह पहाड़ की तरह गम्भीर और शान्त दिखाई देता।

एक दिन शाम को जब वह पहाड़ से उतरने लगा, तो ताताचारी ने रास्ते में उसे रोक कर कहा—"वेंकटरामन मर गया। पोस्टमास्टर की बेटी विधवा हो गई !"

गोपालन हत बुद्धि-सा खड़ा रह गया। वृद्ध ताताचारी ने कोमल के प्रति उसके स्नेह को जान कर घृणा से मुँह

फेर लिया। निस्सहाय कोमल के अँधकार मय भविष्य की बात सोच कर गोपालन का हृदय काँप उठा।

इसके बाद कुछ दिन चुपचाप बीत गये। फिर एक दिन गोपालन चौंक उठा। सामने एक लड़का खड़ा था। उसने लड़के की ओर बिना देखे ही पूछा—"कौन है तू? कहाँ से आया है?"

लड़का उसकी ओर निस्संकोच आँखों से देख कर बोला—"कोमल अम्माँ ने भेजा है।"

गोपालन जान कर भी अनजान बन गया। उसने अपरिचित की भाँति सिर उठा कर पूछा—"क्या बात है? कहता क्यों नहीं? बेकार क्यों खड़ा है?"

"उन्होंने आपको बुलाया है!" लड़के ने कह कर जीभ काट ली।

गोपालन हँस दिया। उसने कहा—"बुलाया है! क्यों? कह दो जा कर, गोपालन उसका नौकर नहीं है! समझे? जा, चला जा यहाँ से!"

लड़के की जीभ तालू से सट गई। वह कहना चाह कर भी और कुछ नहीं कह सका। इधर-उधर देख कर चला गया।

गोपालन का हृदय उम्माद जनित संतोष से भर गया। सोचने लगा वह, 'आज जब कोई साथी नहीं है, तब गोपालन की याद आई है! किन्तु मैं तो एक दरिद्र अर्चक हूँ! वह तो धनी घर में पली है। रुपया पानी की तरह बहा

सकती है। वह क्यों मेरी प्रतीक्षा कर रही है?' और उसको शांति-सी अनुभव हुई। 'आज वह विधवा है। आज वह किसी काम की नहीं है। आज समाज में उसका कोई स्थान नहीं है। दो दिन बाद पुष्करिणी में नहा कर गले में गीला आँचल डाल कर आयेगी, तब देखूँगा उसका गर्व! जब ब्राह्मण अपने हाथों से उसके गले का तिरमंगल्यम तोड़ कर फेंक देंगे, जब उसका यौवन सिर धुन-धुन कर सुहाग के लिये तड़पेगा, तब देखूँगा उसकी शेखी!' वह पागलों की तरह हँस उठा। और स्वयं वह? उसके होंठों पर घृणा की हँसी सर्पिणी की तरह तड़प उठी। क्या है गोपालन? कुछ नहीं! निरी मिट्टी!

इस द्वन्द्व ने उसे पराजित कर दिया। वह छत की ओर देख कर, एक बार मन-ही-मन काँप उठा।

सहसा पग-चाप सुन कर सिर मोड़ा। देखा, तो विश्वास नहीं हुआ। सामने वज्राहत-सी कोमल खड़ी थी। वह आज भी सिर में तेल डाले थी। माथे पर कुमकुम लगा था, हाथों में चूड़ियाँ थीं। पूरी सुहागिन बनी थी आज भी। किन्तु आज वह एक प्रेत के लिये अपने आप को सजाये हुई थी, क्योंकि ग्यारहवें दिन ही धर्म के अनुसार वह अपना यह स्वरूप त्याग सकेगी।

गोपालन को लगा कि कोमल का साराशृङ्गार ऐसा था, जैसे स्वर्ण चिता लपटें उछाल-उछाल कर धधक रही

हो। उसकी छाती धक से रह गई। उसने देखा, और देखता ही रह गया।

कोमल ने कहा—"आयङ्गार, मैंने तुम्हें बुलाया था। जानते हो क्यों?"

"नहीं!" उसने कहा—"किन्तु सोचता अवश्य हूँ!"

"क्या?" उसने निर्भीकता से पूछा।

"यही कि तुम एक जमींदार की पत्नी हो, और..."

"पत्नी नहीं' आयंगार," कोमल ने बात काट कर कहा—"विधवा कहो, एक मृत जमींदार की विधवा!" और वह हँस दी।

गोपालन के शरीर में वह हँसी ज्वाला बन कर फैल गई। उसने नितांत कठोरता से कहा—"विधवा ही सही। किन्तु तुम्हारे स्वामी मर कर भी जमीन तो अपने साथ ले नहीं गये! उसकी तो तुम्हीं स्वामिनी हो। धन तो तुम्हारे पास है ही। तभी तुम्हें आज्ञा देना आता है! इसी से बुलवाया था न? मुझ-जैसे ब्राह्मण खरीद लेना क्या तुम्हारे लिये कठिन है?"

कोमल मुस्कराई, और बोली— "नहीं, आयंगार, यह गलत है! यदि मैं अपने को घर के भीतर रखने का प्रयत्न न करती, तो संसार मेरी ओर उँगली उठा कर कहता है कि 'देखो, मरने का आसरा देख रही थी। उसके जाते ही इसका रास्ता खुल गया।"

गोपालन ने सुना। पर वह कुछ भी नहीं समझ सका। वह चुप खड़ा रहा। कोमल ने फिर कहा—"जानते हो, मैं तुम्हारे पास क्यों आई हूँ?"

"नहीं!" उसका स्वर गूँज उठा! अब भी जैसे उसे उससे कोई समवेदना नहीं थी।

कोमल कहती गई— "जानते हो, मेरे स्वामी शराब पीने लग गये थे?"

"जानता हूँ! वह पापी था!" गर्व से उसने सिर उठा कर कहा।

"हूँ!" कोमल हँस दी। "पापी कौन है, यह तो ईश्वर ही जानता है। मैं तो केवल यह जानती हूँ कि वह मेरे स्वामी थे!"

गोपालन ने सिर उठाया। देखा, वह तनिक भी लज्जित न थी, जैसे चिता की राख कभी भी लज्जित नहीं होती, चाहे उस पर कुत्ते खेलते रहें या गीदड़!

"स्वामी!" गोपालन के मुँह से निकला—"तो वह शराब क्यों पीता था?"

"डाक्टर ने कहा था कि दवा के रूप में पियो। किन्तु वह भी आदमी ही थे, आदत पड़ गई। बहुत पीने लगे स्वास्थ्य गिर गया। किन्तु छोड़ नहीं सके। दोष तो मेरे सुहाग का है, उनका नहीं! आखिर ग़लती आदमी से ही तो होती है!"

गोपालन ऊब गया। उसने पूछा—"तो तुम मुझसे क्या चाहती हो?"

"पिता जी की उनसे लड़ाई थी, यह भी तुम शायद जानते हो। और मैं पिता के घर नहीं जाती, यह भी तुम्हें शायद मालूम है। मालूम है न?"

गोपालन ने सिर हिला दिया।

"आज उनकी मौत पर मेरे पिता ने हर्ष मनाया है! सारा समाज उनकी ओर है, क्योंकि उनके पास पैसा है!"

"पैसा तो तुम्हारे पास भी है!" गोपालन ने व्यंग्य से कहा।

"कहाँ! जब था, तब था! अब तो नहीं है!"

"क्यों? सब क्या हो गया?"

"शराब मुफ्त तो मिलती नहीं?" और वह फिर हँसी। गोपालन अचरज-भरी आँखों से देखता रहा।

वह फिर बोली—"तुम्हारे धर्म में पिता पुत्री का शत्रु हो कर भी धार्मिक ही रहता है! लेकिन मैं भी सिर नहीं झुकाऊँगी! देखते हो, जो गहने पहने हूँ! बेच दूँगी इन्हें। पति का क्रिया-कर्म तो करना ही होगा। नहीं मानती न सही; नहीं जानती, न सही! किन्तु मनुष्य मर कर प्रेत नहीं होता यह भी तो नहीं जानती! पुरखे जो कुछ करते आये हैं, उसे कर देना भी तो जरूरी है, आयंगार? और फिर एक जमींदार का क्रिया-कर्म भी तो उसकी प्रतिष्ठा के

अनुकूल और अनुरूप ही होना चाहिये न ?" वह रुक गई, जैसे श्वास लेने के लिये।

"तो तुम तैयार हो ?" दो क्षण निस्तब्ध रहने के बाद उसने कहा—"ब्राह्मण आते नहीं। मैं तो कहीं आ-जा नहीं सकती। तुम अपने ऊपर क्रिया-कर्म करा देने की ज़िम्मेदारी लेते हो।

गोपालन चुप रहा।

"नहीं होता साहस ?" उसने पूछा—"यदि तुम्हारा धर्म एक बात आवश्यक कर के उसका साधन केवल रिश्वत के बल पर दिला सकता है, तो मैं कुछ नहीं कहती ! क्रिया-कर्म न होगा, तो न हो ! तब मेरा सुहाग भी समाप्त न होगा ! जब तक वह प्रेत है, तब तक मैं विधवा नहीं हूँ। मैं ऐसे ही श्रृंगार करती रहूँगी। तब एक दिन लाचार हो कर तुम ब्राह्मणों को शायद मेरी हत्या करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जायगा !"

गोपालन के हृदय को जैसे किसी ने ज़ोर से नोच लिया। प्रेत की पत्नी ! कौन ? कोमल ! नहीं, नहीं, यह अत्याचार नहीं हो सकता ! उसने सिर उठा कर दृढ़ स्वर में कहा—"जाओ, लौट जाओ ! मैं आऊँगा तुम्हारे सुहाग का अन्त करने ! जिस धर्म ने ब्राह्मण को सब-कुछ बनाया है, उसी ने ब्राह्मण का सब से बड़ा अपराध धर्म के काम न आना भी कहा है ! तुम्हारा पति पापी था। मैं उसकी आत्मा को न केवल प्रेत-योनी से छुड़ाऊँगा, बल्कि उसे

पवित्र भी करूँगा। युग-युग के अंधकार में वह नहीं भटकेगा। उसकी प्यास बुझेगी, उसकी भूख मिटेगी। और तुम्हारे सौभाग्य का कुमकुम मिटा कर मैं तुम्हें भी पवित्र कर दूँगा। तुम्हारी यातना को मैं मंत्रों से केवल समाप्त ही नहीं करूँगा, वरन एकादश के दिन स्वयं प्रेत का यम-भोज करूँगा, और वह सीधा स्वर्ग चला जायगा!" कह कर गोपालन ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे आशा कर रहा हो कि वह कृतज्ञता से नतमस्तक हो जायगी, क्योंकि एकादश का यम भोज अग्नि की भेंट किया जाता है, क्योंकि परम्परा का विश्वास है कि पवित्र वैदिक रीति से चलने वाला ब्राह्मण उसे खा कर अधिक दिन जीवित नहीं रहता।

किन्तु कोमल अप्रभावित-सी खड़ी थी। उसने सिर हिला कर कहा—"वह सब तो नहीं होगा, आयंगार! जो खाली हो गया है, वह तो कभी भी नहीं भर सकेगा। हाँ क्रिया-कर्म अवश्य हो जायगा। मैं कृतज्ञ होऊँगी!"

गोपालन किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा हो गया। वह क्या कहे?

तभी कोमल ने मुड़ कर कहा—"तो, आयंगार, कल नवाँ दिन है। कल ही से काम प्रारम्भ होगा।"

"तुम निश्चित रहो!" गोपालन ने उत्तर दिया।

कोमल झुकी, और प्रणाम किया। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू पृथ्वी पर टपक पड़ा। उसने कहा—"जाती तो हूँ!...यह मैं जानती हूँ कि मेरे आने के पहले तुम मुझसे क्रुद्ध थे। अब तो नहीं हो?"

"नहीं !" गोपालन ने निर्विकार हो कर कहा।

"तुम पूरे पत्थर हो ! तुम्हारा हृदय शायद मेरे अत्याचारों के कारण अब बिलकुल निर्जीव-सा हो गया है ?"

"नहीं ! " गोपालन ने कह कर मुँह फेर लिया। फिर उसने एक क्षण रुक कर कहा —"यह गर्व ले कर न जाना कि तुम ने मुझे मूर्ख बना दिया है। जो कुछ मैं कर रहा हूं, वह केवल इसलिये कर रहा कि ब्राह्मण होने के कारण लाचार हूं ! मैं तुम पर कोई भी एहसान नहीं कर रहा हूं ! और न मैं तुम्हें प्यार करता हूँ !"

कोमल हँस दी। उसके होठों पर एक तरलता सिहर उठी। उसने स्नेह-भरे स्वर में कहा—"बालक !"

जब वह चली गई, तो गोपालन काम में लग गया।

दूसरे ही दिन धूम-धाम से क्रिया-कर्म प्रारम्भ हो गया। पहले जो ब्राह्मण हिचक रहे थे, अब वे अपने आप आने लगे। गोपालन ने अपने हाथ से कोमल के गहने बेच कर उसके सामने रुपये रख दिये। काम चल निकला। प्रारम्भ के सारे विघ्न राह से हट गये।

इस सब से जो सबसे अधिक क्रुद्ध हुई, वह राजम थी। उसने पूछा " क्यों, काफी मिलेगा ?"

गोपालन ने उपेक्षा के भाव से कहा—"मौत का काम है, शादी का नहीं कि ज़िद करूंगा ! ज़मींदार की विधवा जो दे देगी, ले लूँगा ?"

"ओ हो ! अब तो पूरे धर्मात्मा बन गये ! यहाँ मुफ्त भर पेट खिलाती हूँ न बाप-बेटे को, इसी से दिमाग आसमान पर चढ़ा जा रहा है ! अगर सौ रुपये ला कर मुझे न देना हो, तो यहाँ मुँह मत दिखाना ! हयादार होगे, तो आप ही यहाँ लौट कर न आओगे ! भली कही ! रोज़ बड़े आदमी मरते हैं न कि उनका भी काम मुफ्त किया जाय ! देने को पैसे न हो, तो मान भी लिया जाय। जमीन तो छाती पर बाँध कर ले नहीं गया ! अभी बहुत है। फिर अभी से क्यों फटी जा रही है उसकी छाती ? मरे का परलोक सुधारने में भी पैसा खर्च न करेगी ! कंजूस कहीं की !"

"भाभी !" पहली बार गोपालन ने कठोर प्रतिकार किया—"मैं कुत्ता नहीं हूँ ! समझीं ?"

"तो मैं भी गाय नहीं हूँ ! समझे ? बैल भी जब हल चलाते हैं, तब खाने को पाते हैं। और यहाँ बाप और बेटे दोनों की जुगाली सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गये ! मैं कहे देती हूँ..."

गोपालन से अधिक नहीं सुना गया। चिल्ला उठा—"भाभी ! तेरा पाई-पाई चुका दूँगा ! जब तूने खिलाया था, तब मैं छोटा था, नहीं तो कभी वह ज़हर न खाता ! पिता वृद्ध हैं। तू जो अपना सुहाग लिये फिरती है, सो अपने पति को तू ने नहीं खिलाया था। इस बूढ़े ने ही अपनी हड्डी निचोड़ कर उसे खिलाया-पिलाया था ! समझीं ?"

राजम अवाक् देखती रह गई। गोपालन के चले जाने पर, उसने वृद्ध नयनाचारी को जा घेरा। कहा—'देवर वेंकटरामन् के एकाह ( एकादश ) में बैठने वाले हैं !"

"सो तो उसे करना ही चाहिये ! ब्राह्मण का बेटा है न !" वृद्ध ने कहा। उनकी वाणी हमेशा नम्र रहती।

"और पैसा कुछ भी नहीं मिलेगा !" राजम ने उकसाया।

"न सही !" वृद्ध ने प्रसन्न हो कर कहा—"किन्तु धर्म का काम तो करना ही होगा। यदि पैसे के बल पर ही क्रिया-कर्म हो, तो मुझ जैसे गरीब का तो कभी न हो सकेगा !"

राजम लाचार हो गई। वृद्ध के पीछे ही वह बड़बड़ाती थी। सामने कुछ कहने का साहस नहीं होता था। उसने अंतिम बाण मारा—"देवर ब्रह्मचारी हैं। क्या उसका एकाह में बैठना उचित होगा ? यदि वह भी नहीं रहेगा, तो फिर वंश कैसे चलेगा ? कौन देगा हम सबको पानी ?"

वृद्ध चौंक उठा। उसने सोच कर कहा—"तो उस मूर्ख से किसने कहा कि वह एकाह में भोजन करे ? किसने कहा उससे ? बाप के रहते बेटा बैठ जाय, ऐसा तो कभी नहीं सुना ! मैं बैठूँगा ! घबरा मत ! तेरे देवर का बाल भी बाँका न होगा ! न जाने मुझसे कौन कहता था कि अब समय आ गया ! सचमुच समय आ गया !" और वृद्ध गम्भीर हो गया।

दिन बीत गया। साँझ बीत गई। रात हो गई। वृद्ध वैसे ही चिंता में मग्न-सा बैठा रहा, जैसे अपने लम्बे रास्ते को मुड़ कर देख रहा हो, और अपने पिछले प्रत्येक कर्म को याद कर रहा हो, जैसे उसे उन पुराने पथों से मोह हो गया हो जो अब उसे सदा के लिये छोड़ देने होंगे। वह नहीं रहेगा, नहीं रहेगा, और दुनिया फिर भी चलती जायगी, चलती जायगी। किंतु फिर भी उसे दुख नहीं था, डर नहीं था। जैसे जीवन को उसने स्वीकार किया था, वैसे ही मृत्यु को भी वह चुपचाप स्वीकार कर लेगा। सारा जीवन एक खेल-सा लग रहा था। कल तक सब के केन्द्र वही थे, और कल जब वह नहीं रहेंगे, तो बेटा छाती पर पत्थर रख कर रो लेगा। और क्या करेगा बेचारा? सदा के लिये सब काम तो रुकेंगे नहीं। किन्तु इसके लिये क्या दुख? यह परम्परा तो ऐसे ही चलती जायगी। पिता पुत्र का संसार बनाये, और पुत्र पिता का परलोक बनाये। इसीलिये तो इतने स्नेह, इतनी भक्ति की सृष्टि हुई है।...एकाह में बैठना होगा। ब्राह्मण हो कर केवल धन के लिये मरे, तो वह कुत्ते से भी बदतर! आज ब्राह्मण जो लोलुपता दिखा रहे हैं, इसी कारण तो उनका मान नहीं रहा। अब बड्डन (भंगी) भी राहों पर आते समय आवाज दे कर हट नहीं जाते। फिर मन में विचार आया—क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या अब उनकी छाया लगने से भगवान अस्पर्श्य हो गये? नहीं मृत्यु की महान

समता के उच्च आदर्श के प्रकाश में वृद्ध ने उस जड़वाद को दुतकार दिया।

कल गोपालन याद करेगा कि वृद्ध यहाँ बैठता था, यहाँ पूजा करता था। और बैठ कर घंटों सोचेगा, घबरायेगा। किन्तु होते-होते सब ठीक हो जायगा। समय अपने आप ठीक कर लेगा। वृद्ध का हृदय अतीव स्नेह से एक बार विह्वल हो गया। मृत्यु आ कर सब-कुछ समाप्त कर देगी। और पागल बेटा उस मिट्टी को चिता पर रखते समय रोयेगा।

मृत्यु ! वृद्ध के मुँह से वेद के महामृत्युंजय मंत्र के शब्द फूट निकले—'त्र्यम्बकं...' जैसे आज वह अनेक शक्तियों से पूर्ण महारुद्र त्र्यंबक का यम को क्षण भर रोकने के लिये आवाहन कर रहा हो।

और जो कुछ अभी तक हुआ है, कल ऐसे लगने लगेगा जैसे कभी नहीं हुआ। राख को बहा कर जब पुत्र लौटेगा, तब संसार में नयनाचारी नाम का कोई चिह्न तक नहीं रहेगा। आज तक जिस सब को अपना समझा था, वह सब पराया हो जायगा। सब पीछे छूट जायगा, सब रह जायगा। किन्तु केवल वही नहीं रहेगा। 'कल मैं ही एकाह में बैठूँगा!' और वृद्ध वैसे ही बैठा रहा। जैसे आज जीवन मृत्यु का महान आवाहन कर रहा हो!

राजम स्तंभित-सी, डरी-सी सोच विचार में पड़ गई। 'यह बूढ़ा क्या करने वाला है? क्या सचमुच वह जा कर एकाह में बैठ जायगा? एकाह का भोजन वे अग्नि की भेंट

क्यों नहीं कर देते ? किन्तु उनकी बला से ! जब एक मूर्ख ब्राह्मण मिल रहा है, तो अग्नि में क्यों डालें ? और दक्षिणा के नाम पर दिखा देंगे सींग ! कुछ नहीं ! कौन देता है सिधाई से ?' और वृद्ध नयनाचारी और गोपालन के प्रति उसके मन में ममता जाग उठी । 'कुछ भी हो, अपने तो ये ही हैं ! ईश्वर की इच्छा ! जो होना होगा, वह तो होगा ही ।'

एकाएक वह ब्राह्मण जाति को मन-ही-मन तिरस्कार से गाली दे बैठी । किन्तु फिर ध्यान आया कि यह ब्राह्मण की ही महिमा थी कि वे जान गये कि मरने पर आदमी प्रेत होता है, और...वह डर गई, और प्रायश्चित्त के रूप में भगवान के समक्ष सिर झुका कर हाथ जोड़ दिये ।

...वह चुपचाप देखती, गोपालन व्यस्त रहता । ब्राह्मणों को कोमल उसी की राय ले कर दक्षिणा देती । सब काम वही करता । कोई-कोई स्त्री उसकी ओर संदेह-पूर्ण दृष्टि से देखती कि इसे इस सबमें इतनी दिलचस्पी क्यों है । किन्तु वह शोक का काम था इसीलिये उसकी चर्चा चल न पाती, वर्ना वहाँ कोई ऐसा न था, जो कोमल और गोपालन के संबन्ध के अनौचित्य की संभवता पर विचार करना पसन्द न करता हो ।

उन दोनों के सबन्ध के विषय में सन्देह लोगों को बहुत पहले से ही था । अब सन्देह सत्य-सा लगने लगा ।

राजम को क्रोध आया । 'तभी सब काम मुफ्त किये जा रहे हैं ! राँड़ से लगाव जो हो गया है ! देखो तो, ऊपर

से कैसा चिकना बादाम लगता था ! मगर अन्दर की किसे खबर थी ?"

ग्यारहवाँ दिन अपनी पूरी भयंकरता के साथ सिर पर आ गया। जब कोमल को देख कर स्त्रियाँ इधर–उधर से आ–आ कर, छाती पीट–पीट कर रोने लगीं तब वाधार (पुरोहित) ने अग्नि में आहुति दी। खाना केले के पत्ते पर परोस दिया गया। कोमल चुप खड़ी रही। उसकी आँखों में एक भी बूँद आँसू नहीं था, बल्कि एक गर्व था कि देखो, किसी के किये कुछ न हुआ, क्रिया–कर्म हुआ और हो रहा है

वाधार और अनेक ब्राह्मणों ने मंत्र पढ़ने शुरु किये। 'प्रेत' शब्द साक्षात कराल प्रेत बन कर आग से उठते धूँए को झकझोर गया। वाधार ने एकाएक पूछा—"एकाह में कौन कौन बैठेगा ?"

ब्राह्मण एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी को नहीं मालूम था कि दक्षिणा क्या मिलेगी। व्यर्थ कौन मौत सिर पर मोल लेता ? शठकोपन् ने बैठे–बैठे ही कहा–"अग्नि को होम करो बृहस्पती !"

"नही !" गोपालन ने आगे बढ़ कर कहा—"मैं बैठूँगा !"

सब ने अचरज से उसकी ओर देखा। वाधार रुक कर बोला—"तुम्हारा नाम ?"

उसी समय गोपालन ने विस्मय से देखा, एक वृद्ध ने पीछे से कहा—"नयनाचारी !"

वाधार ने पूछा—"पिता का नाम ?"

"विजयराघवाचारी !" उसके मुख पर एक मुस्कराहट फैल गई।

गोपालन चिल्ला उठा—"पिताजी, यह तुमने क्या किया ?"

वाधार तब तक नयनाचारी पर यम का आवाहन कर चुका था। गोपालन का हृदय भर आया। वह बोला—"किन्तु, पिताजी तुम मर जाओगे ! क्या तुम नहीं जानते कि पवित्र आचरण रखने वाला ब्राह्मण इसके बाद अधिक दिन तक नहीं जीवित रहता ?"

वृद्ध ने मुस्करा कर कहा—"श्रीनिवासन ने स्वप्न में जो कह दिया है, वह क्या झूठ होगा ? जा, राजम तेरा विवाह करा देगी। इसके बाद मुझे पितृ-ऋण से मुक्त कर देना।"

किन्तु गोपालन नहीं हटा। वृद्ध ने धक्का दे कर उसे हटा दिया, और खाने बैठ गया।

वाधार मंत्र पढ़ता रहा। कभी-कभी अन्य ब्राह्मण भी स्वर में स्वर मिलाते। उनके गम्भीर शब्द से अग्नि थर-थराने लगी, धुँआँ चारों ओर फैल गया, और प्रेत की अनन्त यात्रा सजीव हो कर आँखों के सामने नाच गई।

जब वृद्ध खा कर उठा, तो वह मुस्करा रहा था। वाधार ने दक्षिणा देने को जब हाथ उठाया, तो वृद्ध ने

अंजलि ले कर सब ब्राह्मणों को बाँटने का इशारा किया। प्रेतत्व धन पर हट गया। पच्चीस रुपये ब्राह्मणों में बँट गये।

वृद्ध चला गया। क्रिया-कर्म सम्पन्न हो गया। घर-घर नयनाचारी की तारीफ़ होने लगी! किन्तु राजम ने गोपालन और कोमल की बदनामी करनी शुरू कर दी।

वृद्ध घर पहुँचते ही शैय्या पर जा लेटा, और जाने क्यों इतना अशक्त हो गया कि उठ नहीं सका। तीसरे दिन जब राजम, गोपालन घर पर नहीं थे, हाथ-पैर फेंक कर वह अपने विश्वासों पर बलि हो गया, मर गया।

घर आ कर राजम और गोपालन ने देखा, और रो-धो कर उसका दाह कर दिया। किन्तु क्रिया-कर्म के लिये रुपये नहीं थे।

गोपालन कोमल के सामने उपस्थित हुआ।

"सुना, आयंगार! बहुत दुख हुआ!" कोमल ने कहा—"तुम्हारे पिता मनुष्य नहीं देवता थे!" और बिना माँगे ही सौ रुपये निकाल कर दे दिये।

गोपालन रो दिया।

कोमल ने कहा—"अयंगार, एक बात कहूँ? बुरा तो नहीं मानोगे?"

"नहीं।" गोपालन ने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"जानते हो, दुनिया हमें बदनाम कर रही है?"

"मालूम है!" गोपालन ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"डरते तो नहीं?" उसने फिर पूछा।

"नहीं! डरूँ क्यों? क्या हम में अनुचित संबन्ध है?"

"अनुचित सम्बन्ध तो है, आयंगार! उसे तुम यों नहीं मिटा सकते!"—कोमल ने उसके चेहरे पर आँखें गड़ा कर कहा।

"क्या कह रही हो?" गोपालन का स्वर काँप गया।

"क्यों?" कोमल ने कहा—"सम्बन्ध क्या शारीरिक होने से ही अनुचित होता है, मानसिक होने से नहीं?"

"वह तो केवल धारणा-मात्र होती है," उसने सक-पका कर कहा।

कोमल हँस पड़ी! उसने सिर हिला कर कहा—"तो तुम्हारा प्रेम, उन्माद, पागलपन, सब केवल एक साधारण धारणा थी, जो आई और चली गई? फिर जान देने पर क्यों तुले थे?"

गोपालन लजा गया। कोमल ने ही फिर कहा—"हम बदनाम तो हो ही गये! अब और किसी पर तो मैं विश्वास कर नहीं सकती। तुम्हारा ही भरोसा है। तुम्हीं जमींदारी

का काम सँभालो। जानते हो, मैं औरत हूँ। सब काम अकेले नहीं कर सकती।"

गोपालन चुप रहा। अर्थात् उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

राजम को चैन न आना था, न आया। पहले गोपालन रोटियों के लिये उसका मुहताज था, पर अब नहीं रहा। जमींदारी का इन्तजाम करता, और बड़ी खूबी से करता। सारा रुपया कोमल को दे देता। वह जो देती, ले लेता। बात पलट गई। पहले वह रोटियों को तरसता था, अब वह राजम को उल्टे रुपया देता। पहले राजम के दस काम करता था, अब राजम अकेली पड़ गई। इसी से जब कोई अधिकार जताने और लड़ने को नहीं रहा, तो वह व्याकुल हो उठी। सुहागिन वह अब भी थी, किन्तु कुंकुम लगा कर क्या पत्थरों पर सिर पटकती? वृद्ध जहाँ-जहाँ बैठता था, वहाँ-वहाँ उसे बैठ कर एक विश्रांति की सांत्वना-सी मिलती। वृद्ध की मृत्यु का एकमात्र कारण गोपालन को समझ कर, वह और भी उसके विरुद्ध हो गई। ढल चली थी, मगर अभी बूढ़ी तो नहीं हुई थी। धीरे-धीरे उसको इस बात से सन्तोष होने लगा कि कोमल और गोपालन के सम्बन्ध की बात घर-घर चल रही थी। सब उस पाप को रोकना चाहते थे, किन्तु कोई सिलसिले का छोर हाथ में नहीं आता था कि पकड़ कर खींच लें, और सारा पर्दा सर्र से खुल जाय।

कोमल ने गोपालन को देखा, और चिंतित स्वर में बोल उठी — " सुना, आयंगार ? अब तो रहना भी कठिन होता जा रहा है ! ऐसे कब तक चलेगा ? "

गोपालन ने पानों पर चूना लगाते हुए कहा—"तुममें तो साहस था न ? फिर डरती क्यों हो ?" कहते हुए उसने सुपारी मुँह में डाल कर आठों पानों को मुँह में भर लिया, और चबाने लगा ।

कोमल कुछ देर तक चुप खड़ी रही । फिर बोल उठी—"डरती हूँ ! सच, आयंगार, मैं अपने मन से डरती हूँ ।" वह हठात् चली गई ।

गोपालन के हृदय में एक कील-सी चुभ गई ।

सांझ बीत गई । दीपक जलने लगे । उनके धूमिल प्रकाश में गोपालन ने देखा, कोमल चुपचाप खड़ी थी ! वह उसके पास चला गया ।

कोमल उसे देखकर सिहर उठी । कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—"मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है ! क्यों ? "

गोपालन ने सिर हिला कर अस्वीकार किया । फिर मुँह खोला, और बन्द कर लिया ।

"कुछ कहना चाहते थे ? कहते क्यों नहीं ? मैं क्या तुमसे कुछ कहती हूँ ? तुम्हारी ही दया से तो सब काम ठीक तरह चल रहे हैं !" कहने को तो कह गई, पर फिर नीचे का होंठ दाँत से काट लिया ।

गोपालन ने वह सब नहीं देखा । वह बोला—"दया तो तुम्हारी है, कोमलम्मा ! तुम्हारे पास रह कर मुझे

जितना सुख मिलता है उतना और कहीं भी नहीं मिलता !"

'क्यों ?" उसने उसे और उसकाया।

"तुम मुझे बड़ी अच्छी लगती हो !" गोपालन ने कहा—"सच, बहुत अच्छी लगती हो !"

देखा, वैधव्य में भी वह वैसी ही सुन्दर थी, और उसकी मादकता अब भी धीरे-धीरे उस पर रेंग रही थी। गोपालन का हृदय आतुर हो उठा। धुँधला प्रकाश एक नशा-सा दे रहा था। दोनों आँखें खोल कर एक-दूसरे को ऐसे देखते रहे, जैसे चार दीपक और जल उठे हों ! गोपालन ने आन्दोलित हो कर कोमल का हाथ पकड़ लिया। कोमल ने बे सुध-सी हो कर आँखें मूँद लीं। किन्तु सहसा वह हाथ झटक कर खड़ी हो गई।

गोपालन चौंक कर पीछे हट गया। कोमल की आँखों में क्रोध की भीषण ज्वाला धधक रही थी। वह ठठा कर हँस पड़ी। गोपालन भय से काँप उठा।

कोमल ने उसकी ओर उंगली उठा कर कहा—'तुम ! तुम एक स्त्री को अकेली जान कर उसका अपमान करना चाहते थे ? तुम एक विधवा को अपवित्र करना चाहते थे ? तुम कहोगे शरीर से क्या होता है ? किन्तु मन ? मन भी तो तुम्हारा साँप-जैसा काला और विषैला है ! तुम, जिसे मैंने दया कर के इतने दिन खिलाया, तुम मेरी जड़ काटने पर उतारू हो गये ! पापी !"

गोपालन जड़ हो गया। चेहरे पर काला रंग पुत गया।

किन्तु कोमल चुप नहीं हुई। वह बोलती ही गई—"घर पर तुम कुत्तों की तरह भाभी की दया पर पड़े थे। एक दिन तुमने मेरी ओर हाथ बढ़ाया था, किन्तु मैंने तुम्हें फिर भी अपना स्नेह दिया! और अन्त में तुमने यह चाहा कि मैं कहीं की भी न रहूँ!"

गोपालन का कंठ अवरुद्ध हो गया। वह कुछ भी नहीं कह सका।

कोमल उसके पास आ गई। उसकी आँखों में आँसू थे। उसने रोते रोते उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"मैं जानती हूँ, आयंगार। समुद्र-तीर की बालू पानी सोखती नहीं, तो क्या भीगने से बची रहती है? तुम ने मेरे पीछे ही सब कुछ त्याग दिया! नाम भी छोड़ दिया! मैं जानती हूं, तुम्हारे मन में मेरे लिये अटूट, अक्षय स्नेह है एक काम करोगे?"

गोपालन पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

कोमल ने फिर कहा—"जाओ, गोपालन! आज मैंने पहली बार तुम्हारा नाम ले कर पुकारा है! सदा के लिये इस देश से चले जाओ! कौन है तुम्हारा यहां, जिसके लिये रहना चाहते हो? आग और फूस-साथ नहीं रह सकते, गोपालन! मुझे डर है कि मैं इस अग्नि में भस्म हो

जाऊँगी ! मैं तुम से भीख माँगती हूँ, मुझे अकेली तड़पने दो जाओ ! कहीं सुदूर चले जाओ ! विवाह करके सुखी जीवन बिताओ !... जाओगे ?"

गोपालन ने सिर हिला कर स्वीकार कर लिया। वह निश्चल खड़ा रहा।

कोमल ने कमर से नोटों की एक गड्डी निकाल कर कहा—"यह लो, गोपालन ! ले लो इसे !"

किन्तु गोपालन ने नोटों को नहीं छुआ। वह द्वार की ओर चलने लगा।

कोमल ने हठ करते हुए कहा—"लेते जाओ इन्हें, नहीं तो दर-दर भटकोगे !...ब्राह्मण के बेटे को भीग लेने में लाज क्यों ?"

गोपालन ने फिर भी उत्तर नहीं दिया। वह बढ़ता ही गया।

कोमल ने फिर कहा—"भूखों मर जाओगे ! यहीं कौन मालिक थे, जो इतनी अकड़ दिखा रहे हो ? मुझ पर एहसान रहने दो ! तुम दरिद्र हो ..."

किन्तु गोपालन चला गया।

कोमल ने कुछ देर इधर-उधर देखा, और फिर फूट-फूट कर रो उठी।

...अनेक वर्ष बीत गये थे। उसका हृदय अब भी अपमान से तड़प उठता था।

गोपालन ने आँखें खोल कर देखा। वही प्राचीन अंधकार अब भी छा रहा था। वह उठा, और छत पर घूमने लगा। सामने ही कुआँ था नीरव। पेड़ भी निस्तब्ध थे। दूर किसी प्राचीन काल का वह ऐतिहासिक खंडहर भी मौन था। चारों ओर भयानक नीरवता थी।

'कहाँ है जीवन की ममता का उन्माद ?' हृदय अहंकार से पूछ बैठा।

दूर कहीं फुलवाड़ी के किसी पेड़ पर बैठा उल्लू हँस उठा—एक डरावनी हँसी, जो उस प्राचीन मन्दिर की ईंटों से टकरा गई।

और गोपालन विक्षुब्ध-सा देखता रहा, अविश्वास के कगारों पर खड़ा, अपनी ही यन्त्रणा में घुटा-सा, चुपचाप।

आज वह परदेस में है। कहीं कोई उसका नहीं। जीवन यंत्र-सा चलता जा रहा है। इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं।

# अधूरी मूरत........

मैं जिस छोटी सी दूकान में नौकर था वह दूकान शहर के उस हिस्से में बसी हुई थी जो बहुत ही पुराना था। बड़ी सड़कों की रौनक वहाँ घुस ही नहीं सकती थी क्यों कि उनके लिये हाथ पांव फैलाने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। इसी से यह सोचना कोई कठिन काम नहीं है कि वहां कितने आराम चैन से काम होता था।

मुहल्ला क्या था! एक ज़माने में वहाँ के लोगों के सामने बड़े–बड़े मुसव्विर घुटने टेक देते थे। किताबों के ढेर में से हिसाब लिखते–लिखते जब मैं सिर उठा कर बाहर देखता तो उस सामंतीय युगीन नगर के पुराने पन की वह स्नेहमयी सांत्वना मेरे हलचल से भरे हृदय में एक व्यक्तिगत

संतोष बन कर उतर जाती। मुझे लगता यह उस जीवन का एक खंडहर है जिसके विषादों के ऊपर जिसकी ममता की एकांगिता है, जिसके धुँधल के पर किसी की प्रतीक्षा में जलते हुए दीपक का कोमल प्रकाश है, जिसकी दासता में भी सुहागिन का छोह भरा प्यार है।

और फिर पत्थर की मूर्त्तियां बनाने वाले दस्तकारों का वह अथक परिश्रम जैसे उस पृष्ठ भूमी में एक बहुत ही करुणा तन्मयता थी जिसकी विवशता ही जीने की इच्छा मात्र का वरदान बन कर अपने आप ही पत्थर पर तेज आरी बन कर घिस घिस कर काटा करती थी।

बूढ़ा हरचरन सामने ही बैठता। उसके दो जवान लड़के, एक दस बारह बरस का नाती, बगल में कमरे के जंगले से बँधी गाय, जो कभी बैठ कर जुगाली करती, या उठ कर सानी में रह रह कर मुँह चलाती। पत्थर, सफेद, मटमैले। हरचरन की श्वेत दाढ़ी के बाल उसके वक्षस्थल को ढँक देते, सिर प्रायः गंजा हो चुका था, और आँखों पर काले फ्रेम का चश्मा लगा कर वह चुपचाप पत्थरों की मूर्ति को आखिरी उस्तादी हाथ लगाता, लड़के मूर्तियां गढ़ते नाती अभी केवल पत्थर ही काटता; और उस घर में स्त्रियां भी हैं, छोटे छोटे बच्चे भी हैं, जैसे गाय के साथ बछड़ा भी है...और एक अनवरत धार सा चलता यह जीवन, जैसे समय एक तेज आरी है जो जीवन के कठोर पत्थर को काट देती है और फिर मनुष्य प्रयत्न करके उन टुकड़ों को नवजीवन देने का प्रयत्न करता है।

आज मुझे नौकरी करते अनेक दिन बीत गये हैं, मुझे अपने जीवन से उतना ही असंतोष है, जितना इस पथ को मोटरों का अभाव है, भेद है तो केवल इतना कि यह पथ जानते ही नहीं कि मोटर है क्या, और मैं दुर्भाग्य से कल्पना भी करने का आदी हो चला हूँ।

वृद्ध हरचरन ने मुझे स्नेह से देखा था और कहा था—जब मन करे तब चले आया करो बाबू।

और मेरा दफ्तर, जिसे अपनी तपस्या का गर्व है कि वह भी संघर्ष के इस विराटचक्र में अपना दांत गड़ा कर अपना अस्तित्व बता देना चाहता है......और हरचरन की वह दूकान जिस पर एक सुबह की किरन आती है, दिन भर कमरे में रेंगती है और सांझ हुए भारी कोहरे में ऐसे छिप जाती है जैसे गहरे कपड़ों में कोई गोरा बदन लाज से लिपट कर मुँह छिपा लेता है।

बूढ़ा हरचरन पुकार कर कहता—बाबू ! क्या हो रहा है ?

'क्या बना रहे हो ?' मैंने उस दिन केवल बात बदलने के लिये पूछा।

'कुछ नहीं बाबू' वृद्ध ने उठ कर आगे आते हुए कहा—'वह हैं न सक्सेना बाबू' अमरीकनों के दफ्तर में

नौकरी करली है न ? सो एक तस्वीर दे गये हैं कि ऐसी मूरत बना दो। किसी गोरे को देंगे। वह ही बना रहा था।

उठ कर मैंने देखा। तस्वीर अमरीका की प्रसिद्ध 'आज़ादी की मूर्ति' थी। हाथ में मशाल उठाये।

'बनाई कुछ ?' मैंने पूछा।

'चेहरा तो बनाया है।'

देखा। वह मुख स्पष्ट ही भारतीय था। मैंने हँस कर कहा—लेकिन चेहरा तो हिंदुस्तानी है।

वृद्ध अप्रतिभ होने लगा। मेरे मुख से निकला—तो क्या हुआ ? हिन्दुस्तानी आज़ादी की मूरत सही।

वृद्ध ने सुना फिर धीरे से कहा—लेकिन बाबू यहाँ लेगा कौन ? शब्द मेरे कानों में वज्र की कड़क-की भांति गूँज उठे। और एक कलाकार कह रहा था......!!

दोपहर का वक्त था। जाड़े की धूप की वह नीरव तन्द्रा मध्यकालीन संस्कृति की मुझे बार बार याद दिला देती थी। इसी समय मेरा ध्यान टूट गया। अजनबी के स्वर ने प्यासे दिल का तार छुआ। और गूँज झनझनाती हुई फैल गई। मैंने देखा वृद्ध बैठा अपना सितार टुन टुना रहा था। उस दलित जाति के उस दरिद्र कलाकार को

देख कर न जाने क्यों मेरा मन भीतर ही भीतर रो उठा। युगों की संस्कृति को किस राख ने ढँक दिया है आज जो, उसके भीतर के शोले को बुझा देना चाहती है किन्तु यह उस कंडे की आग है जो धूप में सूख सूख कर कड़े हुए शरीर में तपिश बन कर समाई हुई है जो बुझेगी नहीं, नहीं बुझेगी, धुँआं देती रहेगी, सुलगती रहेगी।

सितार पर वह उंगलियां चल रही हैं मुझे लग रहा है कि सामने रखा पत्थर का टुकड़ा अब शीघ्र ही गा उठेगा। और वृद्ध मग्न होकर गा रहा था—

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो,<br>
समदरसी है नाम तिहारो<br>
चाहे तो पार करो......

स्वर चढ़ता है, स्वर उतरता है। उस अरोहन अवरोहन में न जाने मनुष्य की कौन सी पीड़ा कसक कसक कर रो रही है कि मेरी इस नीरसता की आधुनिकता को आज भारत की युग युग की संस्कृति आत्मा का रोदन बन कर बार बार कंपा रही है जैसे वृद्ध की उंगलियां उस तार को, और दोनों की वह अज्ञात पुकार शून्य के निर्मल प्रसार में धीरे धीरे धुली जा रही है, मिली जा रही है।

मेरी आँखों के सामने उस शांति का भव्य चित्र खिंचता जा रहा है जिसमें अपनी सीमित तृष्णा ही संतोष बन कर दीपक के नीचे का अंधेरा बन कर सिमट कर रह गई थी।

गीत रुक गया । वृद्ध ने मुस्करा कर कहा: क्यों मियां करीम ?

एक मुसलमान हाथ में साइकिल लिये द्वार पर खड़ा था। हैंडिल में दो थैले लटके थे।

आगंतुक ने कहा: वह तो खूब बिकी कल।

'कौन सरस्वती ?' वृद्ध ने सिर उठा कर पूछा।

'खूब बनाई है गुरू' करीम ने कहा : कल तो आफ़ताब साहब भी फड़क उठे देख कर। पहले कहा करते थे कोई मुसलमान मूरत लाओ क्या रोज रोज हिंदू मूरत ले आते हो। गुरू मैं कहता था कि मुसलमानों के यहाँ रिवाज़ ही नहीं है। और फिर पत्थरों में क्या हिंदू, क्या मुसलमान......

वृद्ध गर्व से मुस्कराया जैसे उसके हाथ में पत्थर भी किसी संस्कृति का द्योतक है। मैंने अनुभव मात्र किया। नहीं जानता वृद्ध क्या सोच रहा था। उसने धीरे से कहा: करीम मियां ! यह हवा बढ़ती जा रही है। हम तो ताज-महल भी बनाते हैं। सोचते ही नहीं कि यह किसी मुसलमान जगह की मूरत है।

करीम ने कहा : बकने दो गुरू ! करीम को तो हिंदू मूरत पैसा देती है।

'और' वृद्ध ने हँस कर कहा—न कहोगे हरचरन ताज पर पलता है ! दोनों हँसे।

'तो' करीम ने सोचते हुए कहा—

'तीन और देना बैसी।'

वृद्ध ने नाती की ओर देखा। नाती उठा। तीन सरस्वती की छोटी छोटी मूर्त्तियाँ निकाल लाया अलमारी से। करीम ने उन्हें सहेज कर थैले में रख लिया और कहा : फिर मिलेंगे इन्शा अल्ला······

वृद्ध ने सितार फिर उठा लिया और गा उठा—

समदरसी है नाम तिहारो······गीत अपने आप में पूर्ण है, क्यों कि मन की अतृप्ति उसका आधार है क्योंकि जो टीस है वही रागिणी है, जो गूँज है वही उसका प्रसार है······

'एक नदी है' एक नाला है जिसमें मैला नीर भरा है, किंतु जब दोनों मिल जाते हैं, तब उनका नाम सुरसरि धार पड़ जाता है··· ·····

और मेरे अतीत की वह आत्म विह्वलता आज विश्वास बन कर गरज उठना चाहती है क्यों कि यह मनुष्य की उस सतह की बात है जहाँ मनुष्य अपने संकोचों में पड़ कर मनुष्य से मनुष्य की तो क्या, अपने सम्बन्धों में आये पत्थर तक से घृणा नहीं करता क्यों कि दोनों के मनुष्यत्व को कायम रखने वाली रोटी का सवाल है···भूख के सम्राट के अश्वमेध को रोकने का युद्ध है·········

मैंने एक अंगड़ाई लेकर अपनी उदासी को दूर करने का प्रयत्न किया। वृद्ध उस समय गंभीर होकर कुछ सोच

रहा था। उसकी उस भव्य आकृति को देख कर मुझे कुछ क्षण के लिये मनुष्य की केवल एक झलक दिखाई दी, जिस सिर को काट कर थाल में रख दिया जाये तो पता भी न चले कि यह किसी प्राचीन ऋषि का है, या किसी प्रेम विह्वल सूफ़ी का, या मनुष्य की अपराजित चेतना के प्रतीक गुरुदेव का.........

सामने वही अधूरी मूरत रखी है। वही भारतीय मुख है। धीरे धीरे ऊपर उठा हाथ बनता जा रहा है। एक दिन इसमें मशाल बन जायेगी और फिर आज़ादी की यह मूरत.........

किसी ने कहा : बाबू ?

देखा। एक औरत है। जवान है। लेकिन मन नहीं किया देखने को। उसकी जवानी उसकी बाढ़ सी वृद्धावस्था के हाथों में एक धरोहर मात्र है जैसे महाजन के पास किसान का वह खेत, जो है किसान के ही नाम लेकिन जिसकी फ़सल पर उसका अपना कोई अधिकार नहीं है।

वह पैसा मांग रही है, देख रही है, इधर उधर किसी को न पाकर जैसे मेरी जवानी पर रहम खाकर मुस्करा रही है, फिर मांग रही है, किंतु कोई उत्तर न पा कर चली जा रही है, वैसे ही जैसे कि यहाँ कहीं से इसी तरह, या किसी की ठोकर खाकर, गाली खा कर चलती चली आ रही है और आने जाने की मेहनत पर आत्म सम्मान-हीनता का

मुलम्मा चढ़ाने के कारण ही जिसके पेट के भीतर की सांपिन को रोटी नाम का वह ज़हर मिलता है, जिसको चर के, निगल के वह फुंकारती है और इंसानियत के घमंड करने वालों की सभ्यता पर बार बार फन मारती है, पटकती है।

चलते चलते उसका हाथ उठ रहा है, वह उसकी ओर दिखा रही है जिसके लिये पूर्वजों ने लिखा था कि वह हर जगह है लेकिन वास्तव में जो कहीं नहीं है। उसका वक्षस्थल खुल गया है क्यों कि कपड़े उसके शरीर को जीवितावस्था में भी नहीं ढंक सकते जैसे कि मुर्दे को कफ़न.........

और वह मुझे लगा जैसे वह भी हाथ में मशाल उठाये एक अधूरी मूरत थी जिसको लेने को कोई तैयार न था क्यों कि इसके भी एक भारतीय चेहरा था.........

मैंने देखा। वृद्ध ऐसा बैठा है जैसे वह किसी घोर चिंता में पड़ गया है। उसके सफेद बालों पर धूप का एक छोटा सांचे में से छनता गोला चमक रहा है। लड़कों के पांव घुटनों तक पत्थर के बुरादे से सफेद हो चुके हैं, नाती का मुंह तक सफेद लग रहा है और सामने अधूरी मूरत रख कर कलाकार कुछ सोच रहा है, कुछ देख रहा है और न वह कुछ सोच ही पाता है, न देख ही, क्यों कि वह शायद भूल गया है कि उसे पत्थर काटना है, पिघलाना नहीं है, गलाना नहीं है.........

सांझ हो गई थी। मैं बस्ती के पिछवाड़े के एक तालाब के पास की छतरी में बैठा था। देखा बूढ़ा रच्छन सांझ की उठती धूलि में धीरे धीरे पत्थर की उन दसियों बरस पुरानी सीढ़ियों पर टहल रहा था। उतरते अंधकार में पीछे बसे कुम्हारों के कच्चे मकानों के छप्परों में से छन छन करता सा धुवाँ मिल कर सारे गगन को उदास उदास सा कर देता था। बगल में एक फूल बाटिका है ऐसी जैसी राजपूत मुगल मिश्रित चित्रकला का कोई नमूना हो, जिसके बीच बारहद्वारी, एक शिवालय, एक कुआँ और फिर उसमें कोई एकांत वस्ती। तालाब का पानी गंदला है।

वही भिखारन वहाँ चुल्लू से भर भर कर पानी पी रही है। इस समय वह एक आवारे के साथ है जो उसे बच्चे के रूप में शायद भीख मांगने का एक नया बहाना रात उतरते ही सीढ़ियों पर ही दे जाएगा और भिखारिन समझेगी कि इक्केवाला सिर्फ दुअन्नी दे गया है, बाकी तो सब परमात्मा की देन है।

मैंने देखा वृद्ध उन्मन सा घूम रहा था। मैंने कहा : क्यों गुरू कैसी रही ?

वृद्ध ने मुझे चौंक कर देखा। कहा—बदल गया बाबू। जमाना उनके हाथ नहीं रहा जिन्होंने उसे पाल पोस कर इतना बड़ा किया था।

मैं नहीं समझा। वृद्ध छतरी पर आ बैठा। उस प्रशांत संध्या की नीरवता में पक्षियों की लौटती गुंजार का कलरव,

फिर अनँत आकाश के प्रसार का वह दाहक सूनापन, और अंधकार के थपेड़ों में कांपता निस्वन प्रकाश—जिसके सामने वह भव्य वृद्ध, जिसकी उदासीनता युग की दुरूह उलझन के समान मुझे ऐसी ही विह्वल कर उठी जैसे एक दिन नचिकेता यम के सामने उस जीवन और मृत्यु के प्रश्न करते समय अपने भावों से व्याकुल हो उठा होगा।

वृद्ध ने कहा : एक दिन हम इसी ताल पर खेले हैं, यहीं जवानी में हमने भंग घोटी है, देवी के पाठ किये हैं, नौटंकियां हुई हैं। जब यहाँ चाँदी की पाड़ें बांधी जाती थीं, रात रात भर भगत होती थी.........

और एक दीर्घ विश्वास।

'कहाँ गई वे सब गुरू ?' मैंने पूछा।

'कहाँ गई ?' वृद्ध ने धीरता से कहा। वही तो तुम नहीं समझ सकते बेटा। वह तुम्हारे पैदा होने के पहले ही गोरा मालिक ले गया। तुम तो कीचड़ में पैदा हुए हो......

मुझे लगा जैसे मैं उस गंदे जल पर भन भनाने वाला केवल एक मच्छर हूँ और वृद्ध वह पुराना पेड़ है जो अपनी अनेक जटाओं को लटका कर जल पर छा रहा है।

'वह दूर कैसी रोशनी है ?' वृद्ध ने पूछा।

'वहाँ आज कोई नेता जेल से छूट कर आये हैं। सेठ ने दावत दी है।' मैंने कहा।

'मगर सेठ तो लड़ाई के एक ठेके में लाखों कमा गया। अच्छा ही है। बड़े नेता, पैसे वालों को ढूंढ़ रहे हैं जो पैसे देगा वही ताकत पायेगा।'

मैंने देखा बूढ़ा एक बहुत बड़ा सत्य कह रहा था। लेकिन मन नहीं माना। नेता तो हमने बनाया है। सेठ तो कल सरकार के साथ था, मुँह से लड़ाई की निंदा करता था छिप कर, रुपये कमा रहा था लड़ाई के बल पर खुल कर, हमीं तो कल भी नेता के लिये तड़प रहे थे। नेता हमारा है आज तक हम से लिया है। फिर ले ले। आज तक हमने अपना खून दिया है। आज हड्डियां देने को तैयार हैं। सेठ तो वह नफ़ा देगा जो उसने मज़दूरों का पेट काट कर बचाया है, चोर बाजारी कर के निकाला है। हम पैसा देंगे हमारी सरकार बनेगी।

वृद्ध ने फिर कहा : बाबू! दिन बड़े खराब आ रहे हैं।

मैंने कहा : गुरू बुरा न मानना। जब से होश संभाला है तब से बुज़ुर्गों को यही कहते सुना है। न जाने अच्छे दिन कब आयेंगे ?

वृद्ध ने अन्यमनस्क हो कर कहा : यही तो रोना है कि अब वे शायद कभी नहीं आयेंगे।

मैंने देखा। आकाश और पृथ्वी, पेड़, छतरी, ताल, मैं, वृद्ध सब अंधकार में डूब गये थे। सबको जैसे समदरसी ने एक कर दिया था। किन्तु कैसी साम्राज्यशाही सी है

यह समदरसिता जिसके लिये इतने अंधकार की आवश्यकता है। क्यों हम अभी तक केवल एक मैला नीर भरा नाला हैं...क्या हमारा नाम कभी भी सुरसरि नहीं पड़ेगा, क्या सदा ही जीवन ऐसे विभक्त होकर बहता रहेगा ?

और फिर कुम्हारों की बस्ती से किसी औरत के रोने की आवाज। वह आवाज ऐसी चौंका गई जैसे एक दम अंतराल में कांप कर दीपक फक करके बुझ जाये और मनुष्य को लगे कि वह आकाश से पृथ्वी पर गिर गया है।

मैंने कहा : गुरू कौन रोती है ?

'वही होगी' वृद्ध ने विचलित स्वर से कहा—मुलआ की मां। मुलुआ कटौती के खिलाफ मिल के हड़ताली मजदूरों में था न ? आज पुलिस ने गोली चलाई। जख्मी हुआ था। मर गया होगा।'

जैसे यह मौत का वर्णन उस घोर विवशता का दूसरा रूप है जिसे क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज की देशभक्ति कह कह कर गोरे हर्ष से ताली पीटते हैं।

मैंने देखा। पूछा : पुलिस को बुलाया, आपस में समझौता नहीं किया ? इससे तो अपना ही नुकसान है न ?

'बीच में हिंदू मुसलमान का भी सवाल उठा दिया' वृद्ध ने रोक कर कहा।

मैं कांप उठा। कहा : लेकिन गुरू यह तो फूट का रास्ता है। हम सब तबाह हो जायेंगे।

वृद्ध ने कहा : और मैंने कहा ही क्या है मेरे दुधमुँहे। तेरा वक्त था कि कि तेरी हथेलियां गुलाबी रहतीं, और देखता हूँ आज हिंदुस्तान की जवानी की हालत, तो मन करता है नाखूनों से सीना फाड़ कर बाहर नाली में फेंक दूँ कि मैं यह सब नहीं देख सकता नहीं देख सकता.........

सीढ़ियों पर शायद कुछ हलचल है। अंधेरा है, भिखारिन है, इक्केवाला है.........

और रात है, वृद्ध का हृदय इस लिये रो रही है कि मैं जवान हूँ जब मुझे किसी लड़की से प्रेम करना चाहिये, लेकिन मैं गुलाम हूँ और मेरा यह अधिकार भी छीन लिया गया है.........

और अंधेरा छा रहा है। क्यों कि समझौता करने का मतलब किसी के सत्ता-स्वार्थ पर चोट है, और फिर हराम का बच्चा पैदा नहीं हो सकेगा, ऐश की भूख बाप न बनेगी, औरत का मां होना पाप होगा और वह बच्चा होगी गरीबी... उस पर इंसानियत की झेंप मिटाने का ढोंग—भीख, और अंधेरा गहरा होता जा रहा है।

दीपक का धुंधला प्रकाश कमरे की दीवारों पर कांप रहा था। दरवाजे जाड़े के मारे बंद कर लिये थे।

मैं कुछ देर बैठा रहा, फिर धीरे से मैंने पूछा : तो शुक्र मूरत तो अभी अधूरी पड़ी है ! आखिर पूरी होगी भी या यों ही पड़ी रहेगी ?

वृद्ध ने उदासीनता से कहा : हो जाएगी।

मैंने फिर कहा : अपने आप हो जाएगी ?

वृद्ध चुप रहा। कमरे में सन्नाटा वैसे ही हिल उठा जैसे दीवारों पर छायाएं हिल रहीं थीं। पत्थरों के कोने चमक रहे हैं उनमें एक उज्वलता जैसे मुस्करा रही है वे कुछ कहना चाहते हैं, जैसे गुलामी भी, जो कुछ कराहना चाहती है आज खिले होठों से क्यों कि हर एक आंसू वही तपिश है जिसे निकाल कर इंसान ने आज एक दूसरे पर जुल्म करने के लिये परमाणु बम बनाया है और वह उसे पिघला कर फिर से आंसू नहीं बनाना चाहता क्यों कि उल्लुओं को जागीरें देने से कहीं कठिन है इंसान के लिये एक झोंपड़ी बना देना।

वृद्ध ने चौंक कर कहा : बाबू ! मुझे नहीं मालूम मुझे क्या हो गया है, लेकिन पूरी करने को मन नहीं करता।

'यह पत्थर सफ़ेद होता तो कहीं ज्यादा अच्छा लगता। कुछ मटमैला है। सफेद क्यों नहीं लेते ?'

वृद्ध ने मुझे घूर कर देखा। शब्द बहुत सध कर बाहर निकले—सफेद पत्थर गोरा मालिक अपने काम में लाता है, तभी उसकी मूरत भी अच्छी होती है।' वृद्ध चुप हो गया। भीतर कोई बच्चा रो रहा है। बाहर सन्नाटे की लाश पर कफ़न बन कर कोहरा अपनी सिमटनों को मिटाता जा रहा है क्यों कि लाश बढ़ती जा रही है, क्यों कि यह मुर्दापन भी किसी नये जीवन के लिये संघर्ष कर रहा है, जिसमें यह मजबूरियां किसी उगने वाले सूरज का इंतज़ार कर रही हैं ......

मैंने कहा : लेकिन मूरत अधूरी क्यों रहेगी ?

वृद्ध ने खाँस कर कहा : अगर मूरत पूरी करने में रह जाऊंगा तो खाऊंगा क्या ?

बात मुझे कचोट उठी। मैंने कहा तो क्या गणेश वणेश ही बनाते रहोगे ? रटी रटाई चीजें, सिर्फ इस लिये कि पैसा मिलता है ?

वृद्ध ने मुड़ कर दूसरी ओर देख कर कहा; बच्चे हो न तभी ऐसी बातें करते हो ? मैं मजदूर हूँ। जो पैसा देगा उसका काम करूँगा।

'मैंने मना किया है ?' मैंने पूछा—लेकिन जिसका दाम सेठ और महाजन देगा वह सेठ और महाजन की चीज

होगी। वही जिसमें तुम सिर्फ रोटियों के गुलाम रहो, उसकी हिम्मत पर, और जिसके पैसे पर तुम होगे, वह तुम्हारी चीज होगी, जिसके पीछे तुम्हारी वह कुर्बानी होगी जो किसी अखबार में नहीं निकालेगी लेकिन तुम उस अधूरी चीज को पूरा कर सकोगे जिसको यदि नही करोगे तो बेकार है तुम्हारे हाथों की वह मेहनत जिसके पीछे तुम्हारे ईमान की कसम है।

वृद्ध ने मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखा और कहा : हिम्मत नहीं पड़ती।

मैं हँस उठा। पूछा : तो क्या इस मूरत की हिन्दुस्तान को कोई जरूरत नहीं! हिन्दू मुसलमानों में से उसे कोई भी नही खरीदेगा?

वृद्ध चुप ही रहा। दीपक नही हिल रहा; पर हिलती लौ की हिलती छाया के कारण, दीपक तो क्या, लगता है जैसे सारा कमरा थर्रा उठा है।

वृद्ध का वदन एक बार सिहर उठा जैसे वह कुछ भी नही सोच पा रहा।

मैंने कहा तो क्या तुम्हारी कला तुम्हारे हुनर के मुँह से यही आवाज निकल रही है?

वृद्ध कुछ नहीं बोला। उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा आज शायद वह एक क्षण अपनी लम्बी यात्रा का एक अल्प त्वरित सिंहावलोकन कर रहा था—समय की वह धूप

जिसमें इंसान का सारा काला पन आज दुखों में पक पक कर सफेद हो चुका है, उज्वल हो चुका है पवित्र...स्निग्ध...

मैंने उठते हुए कहा : एक बार गोरा मालिक देखता कि जिसका हकदार वह अपने को समझता था आज हम उसी के घर में उसी को ललकार रहे हैं।

'लेकिन घर तो हमारा लुट रहा है,' कहते हुए वृद्ध ने काँपते हाथ से मेरा हाथ पकड़ लिया। देर तक मुझे देखा और वृद्ध के आकुल कंठ से निकला लेकिन मूरत अधूरी नहीं रहेगी.........

और भीतर बच्चा हंस रहा था।

## मृग-तृष्णा........

ईद की बहार में जीवन का दुख जैसे समाप्त हो गया। चारों ओर ऊधम-सा मच उठा। वृद्ध सत्तार अपनी कोठरी से बाहर निकल आया। उसके सिर पर पट्टे कढ़े हुए थे। शरीर पर पुराना सिकुड़नदार मैला-सा कुर्ता था।

पड़ोस में खाँ साहब का मकान था। बगल में ही राशनिङ्ग के दारोगा थे। मैदान बाज़ार के पिछवाड़े से घिरा हुआ था। उधर जीवन बिकता है, बराबर शोर होता है, यहाँ तक कि हाहाकार में आदमी अपने को आदमी समझना छोड़ देता है; इधर सन्नाटा। उस सन्नाटे में मैले-कुचैले कपड़े पहननेवाले ताशेवालों का सूखा पंजर ताशों के घोर अट्टहास में अपने आपको पीटे चला जा रहा है। समझ नहीं पाता कि

यदि यह कोलाहल भी उसके जीवन की हलचल नहीं है, तो फिर किस मर्यादा के चरणों पर सिर कटा देने के लिये समस्त अभिलाषाएँ अभी जीवित हैं? और, स्वर प्राचीन मुगलिया दीवारों से लौट कर उठता है, और मैदान के ऊपर गुम्बज-सा छा जाता है। बच्चे खेल रहे हैं। उनके कपड़े अत्यन्त चमकदार हैं। उन्हें आज सिमइयों के प्राप्त करने की खुशी हो रही है। वह मिहतरानी हिन्दू है तो क्या, सिमइयों के लिए प्रातः से ही अपने बच्चों को खाँ साहब के द्वार पर छोड़ गई है।

सत्तार के जीवन ने भी कभी हलचल देखी होगी। आज सब उसे भूल गये हैं। अब सत्तार की सत्ता का एक मात्र अपेक्षणीय अन्त है—मृत्यु।

वृद्ध सत्तार खाँस उठा। बालकों में कैसा उन्माद है। उसके शरीर में बहते गर्म रुधिर के लिये इसी कोलाहल की आवश्यकता थी, क्योंकि उनके मन का कोई भी भाग जर्जर नहीं है। सब कुछ चाहिए, यह सारी दुनिया उन्हीं के लिए है। और, सत्तार ने महसूस किया कि वह उस कुत्ते के समान है, जो घूरे पर से उठ कर चाँद की ओर देख कर भूंक भी चुका है; किन्तु जिसका कोई परिणाम नहीं निकला। स्वर एक तीर की भाँति देखते-देखते उठ कर कहीं अपने-आप खो गया।

वृद्ध बड़बड़ा उठा—'पहले······।' फिर मन ही मन दोहराया —

"पहले आती थी हाले दिल पर हँसी, अब किसी बात पर नहीं आती।"

वृद्ध ने आँखें पोंछ लीं। कभी-कभी वह शोर थम जाता, फिर मचने लगता। उस अनवरत बहती घुटन में जैसे एक कशमकश थी; जैसे बिल्ली की गर्दन दाबने पर वह तड़पती हुई पंजे फेंकती है, या कि छिपकिली की कटी हुई दुम अपनी जिन्दगी के पाप के कारण असह्य रूप से छटपटाती है।

वृद्ध उठ कर कोठरी में गया। आबखोरे से पानी पिया। बाकी को फिर सुराही में डाल दिया। नल तो दूर है। बुढ़ापे में पानी भर कर लाना कोई हँसी- ठट्ठा नहीं। जितनी देर चल जाए उतना ही अच्छा। उसने ठण्ढ महसूस की। अपनी पुरानी वासकट पहन ली।

बाहर आकर देखा, मैंदान में एक कुर्सी पड़ी है, जिस पर दारोगा साहब बैठे हुए गरज रहे हैं, और सामने चपरासी एक बहुत ही गन्दे मरियल आदमी को लिये खड़ा है। उस आदमी का चारखानें का तहमद है; दाढ़ी है, सिर घुटा हुआ। बदन पर बनियान है। और कुछ नहीं।

दारोगा साहब ने कहा—"हाँ जी, क्या कहा?" फिर मुड़ कर उस आदमी से बोले—'तो गोया हम झख

मारने के लिए तैनात किये गये हैं। आपकी यह तो है हुलिया, जिस पर चोर-बाजार भी करेंगे और नफ़ाखोरी भी। सपने तो रानियों के देख रहे हैं साहबज़ादे। अश्फ़ाक ?"

"जी हुज़ूर !" चपरासी ने झुक कर कहा।

"चालान करो इसका।"

"हुज़ूर !" उस दूकानदार ने कहा—"दो पैसे ही की तो बात है। दमियों में मेरा गला न कटाइये। ईद का दिन है, अल्लाह आपको.........."

दारोगा साहब ने कर्कश स्वर से कहा—"हरामजादे ! जानता नहीं, यह तू ने जेल जाने का काम किया है ?"

"माई बाप," वह व्यक्ति गिड़गिड़ा कर बोल उठा—"मारा जाऊँगा हुज़ूर ! बाल-बच्चे भूखे मर जायँगे।"

दारोगा साहब ठठा कर हँसे। ज़ोर से पलट कर कहा—सुना आपने खाँ साहब ?"

आराम-कुर्सी पर लेटे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए खाँ साहब ने कहा—"क्या हुआ जनाबमन, गरीब से कुछ खता हुई ?"

"वल्लाह !" दारोगा भारी स्वर से हँसे—"ईद के दिन बेईमानी कर रहा था।"

"कौन है ?"

"अपने आपको मुसलमान कहता है तिस पर......।"

"शैतान की मार हो जालिम पर।" खाँ साहब ने तुनुक कर कहा। फिर उनकी खाँसी का कठोर स्वर गूंज गया।

दारोगा साहब फिर जोर से बोले—"कहता है, बीबी बच्चे भूखे मर जाएँगे।"

"खुदा न करे, दारोगा साहब! सरकार ने आपको इन्साफ करने के लिये इन्सपेक्टर बनाया है.........।" फिर खखार कर थूकने का शब्द। तब तक दारोगा साहब की सुनने में तन्मयता।

"ईद का दिन है। आपकी तालीम का क़ायल हूँ।"

"आप उम्रदराज़ हों। मैं एक अर्ज करता हूँ। ईद के दिन जिसने बेईमानी की, अल्लाह उसे माफ़ न करेगा फिर कमबख्त अपने घर को भी खींच कर फँसा लेना चाहता है। उन्होंने क्या जुर्म किया है?"

"खाँ साहब!" बूढ़े सिद्दीक ने कहा—"छोड़िये भी।"

और, फिर बात बदल गई। दारोगा साहब उठ कर खाँ साहब की बैठक में चले गये। कसाई जैसी गठीली देह वाले उनके चपरासी ने उस दूकानदार को चटाक-चटाक दो चाँटे जड़ दिये।

छोटी बच्चियाँ ऊपर से झांक रही थीं। एका एक खिलखिला कर हँस पड़ीं। एक की पुकार एक दम गूंज उठी—"अम्मीजान! बेचारे को मारा है।"

कहनेवाली बच्ची उतर कर जल्दी-जल्दी नीचे आ गई और खड़ी देखने लगी।

बूढ़े सत्तार ने एक सर्द आह खींची और आसमान की तरफ देखा यह भी देखना था। अल्लाह! दादाजान गोदी में बैठा कर सुनाते कि तब मुगलों का राज्य था, तब फिरंगी सिर्फ सौदागर थे·········और सन ५७ में हिन्दू-मुसलमान एक हो उठे थे, कि अँगरेजों के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई थी। उसे एकदम क्रोध हो आया। क्यों नहीं फिर से एक हो जाते? बावले! मूर्ख······

और देखा, वह दूकानदार अब भी काँप रहा था। पिट कर भी उसे क्रुद्ध होने का अधिकार नहीं है। ईद के दिन! कितना मैला!

चपरासी ने कहा—"बोल, क्या कहती है?"

बच्ची ने पूछा—"तेरा नाम क्या है?"

शमशीर, बीबी।" उसका गला भर आया, जैसे बालिका में उसे अपनी बच्ची की प्रतिकृति दिखाई दे गई हो, जो गंदी होगी, गलीज़ होगी, जिसमें सड़ाँध होगी और जो यदि घर बनी तो बनी अन्यथा बाज़ार से कुल्हड़ में खरीद लायगी और तब तक चाट-चाट कर सब सिमई सगाप्त करके मानेगी, जब तक कि नाखून सफेद न पड़ जायें, और फिर किसी के घर के आगे बजते ताशे के सामने शोर सुनने को जा खड़ी होगी—ऐसे ही जैसे यह बच्ची खड़ी थी···।

"शमशीर !" बालिका ने कहा। उदास हो गई और बूढ़े सत्तार के पास जाकर कहा—"बड़े मियां ! तुम तो कहते थे कि शमशीर का चलना खेल नहीं, जब चलती है तो दोनों तरफ रास्ता साफ हो जाता है ?"

वृद्ध सत्तार ने स्नेह से बालिका के सिर पर हाथ फेर-कर कहा—मेरी बच्ची ! ईद मुबारक हो······।"

"मुबारक हो, मुबारक हो।" बच्ची ने हँसते हुए ताली पीट कर कहा। वह अपनी बात भूल गई।

वृद्ध ने उसकी बात का उत्तर देना ठीक नहीं समझा। वह जानता था कि यही सरकारी चपरासी पुलिस से पहले रिश्वत खाकर शहर में दंगे मचा दिया करता था। इसी ने एक बार एक शिया औरत पर हमला किया था। और, यह वह समशीर भी कहां जो चले ? चले तो वह जिसकी धार पर पानी हो, जिसकी लचक में फौलाद की झन-झनाहट काँपा करे।

फिर कहा—"हमारी अच्छी कुलसुम ने यह बालों में नीला फीता कैसे बाँधा है ?"

"यह ?" कुलसुम ने कहा—"हमें रशीद मियाँ ने लाकर दिया है। वे बड़े अच्छे हैं।"

"लेकिन बेटी, यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता।"

"क्यों ?" बालिका ने उदास हो पूछा।

"इस लिये कि तुम एक ऊँचे खानदान की हो। यह तो फिरंगियों की नकल है। तुम्हें तो सोना पहनना चाहिए।"

"ओहो बड़े मियाँ,.........।"

फिर कठोर स्वर सुनाई दिया—

"सुअर के बच्चे, चला जा यहाँ से।"

मुड़ कर देखा, चपरासी साइकिल पर बैठा शमशीर को पैर से हटा रहा था। और सच ही शमशीर बैठा रहा। चपरासी चला गया था।

कुलसुम ने कहा—"देखो बड़े मियाँ, एक बात कहें.........?"

"कहो बेटी!"

एकाएक भारी स्वर सुनाई दिया—"बीबी कुलसुम, कहां चली गई तुम? इधर आओ।"

कुलसुम ने भयभीत दृष्टि से इधर-उधर देखा और फि आसमान में उड़ते हवाई जहाज को देखती हुई सहमी-सी भीतर लौट गई।

वृद्ध ने माथे पर हाथ फेर कर एक बार ऐसे यादगारों को उमड़ने से रोकने का प्रयत्न किया और चुप हो कर नीचे देखने लगा।

शमशीर ने देखा और जब कोई नहीं दिखा तब सत्तार के पास आ बैठा।

वृद्ध ने ऊबी हुई दृष्टि से देखा। वह जानता था, यह भी एक नई दुख की कहानी होगी, जिसका अन्त पेट, की

आग से होगा। न होता पेट, न शमशीर आज मिट्टी के माफ़िन्द चटकती और न टूटे कुल्हड़ की तरह उसे कूड़े पर फेंका ही जाता।

शमशीर रो रहा था। उसने कहा—"आप मालिक हैं आप। क्या यह इन्साफ है?"

सत्तार मन ही मन हँसा—हिकारत की हँसी। कैसा बेवकूफ है? इतनी हिमाकत कि इसे भी इन्साफ की जरूरत है? इन्साफ को झेलने के लिये बादशाह की सूरत जिस चाँदी पर, जिस कागज पर हो, उसकी जरूरत है।

इसी समय एक मोटे से आदमी ने आवाज दी—"दारोगा साहब! ईद-मुबारक। आप कहां छिपे बैठे हो?"

आगन्तुक कोई सेठ था। सफेद कपड़े पहने, सिर पर खद्दर की टोपी लगाये। गले में सोने की जंजीर, एक लड़ी, दो लड़ी........

भीतर से आवाज आई—"मुबारक हो आपको भी। आया सेठ साहब।"

सेठ भीतर चले गये। कौन नहीं जानता कि वे सैकड़ों हजारों का माल हाथ की सफाई से इधर से उधर करते हैं और दारोगा साहब से उनकी पक्की दोस्ती है। पहली छोटी तनख्वाह देकर सरकार डांट मारती है, मगर अधिकार सौंपती है। दूसरी तनख्वाह देकर सेठ जी दारोगा की खुशामद करते हैं, और यदि अधिकार नहीं दे सकते, तो उन्हें दारोगा की जगह डिप्टी कलक्टरों के ठाट देते हैं। और आज ईद की मुबारकबादी देने आये हैं।

सत्तार फिर हँसा। सारा जमाना एक जाहिल और कमीनी झूठ की बुनियाद पर खड़ा है। वह रोज कालेज के हास्टलों में जाकर झूठ बोलता था। इसी बीच एक बहुत ही मैले कपड़े में रोगन भर कर कहता है—"हुजूर के दरवाज़े, खिड़कियों पर पालिश·········"

"नहीं, नहीं, आगे जाओ·········"

और फिर सत्तार गिड़गिड़ा कर कहता—"मालिक, बच्चे भूखे हैं।"

मिल ही जाता कुछ न कुछ। कहां है इस कोठरी में बच्चे? शायद चूहे के भी न होंगे। मगर बच्चों के नाम पर ही तो थोड़ी सी इन्सानियत बाकी बची है, वरना बूढ़ों को तो खुदकुशी कर लेनी चाहिए। अगर अल्लाह का नाम कुछ नहीं दे सकता, तो बच्चों का ही सही·········

और उसने कहा—"अमां! बात क्या है?"

"बात तो मालिक कुछ नहीं", शमशीर ने कहा—"सड़क पर बैठता हूँ। टुकड़े बेचता हूं यह चपरासी आया। मुझे क्या खबर थी? दो पैसे ज्यादा दाम बता दिये। अल्ला-कसम तुमसे झूठ कहूं तो ईद के दिन दोजख मिले। पेट नहीं भरता कसम से। सो, यह यहां पकड़ लाया। अब कपड़े जब्त, मुहर लगा दी है और अब पैसे मांगते हैं, नहीं तो मुकदमा·········

"तो," सत्तार ने कहा—"तू भी तो रिआया का गला काटता है?"

"खुदा की मार हो", शमशीर ने कहा—"बड़े-बड़े सेठ भूखा मारते हैं, तब दारोगा कुछ नहीं कहते। यहाँ दो डबल पर ही इन्साफ की तलवार झूल गई।"

'अबे, वे साढ़ू हैं एक दूसरे के, समझा? वे भी बचने को रुपया खर्च करते हैं।'

"वे तो मुसलमान हैं?"

"होंगे! मगर इस्लाम से रोटी नहीं मिलती। रोटी सरकार और सेठ देते हैं। वे और हैं, हम और हैं। और बेटा, तू कौवा होकर हंस की चाल चलेगा, तो यही होगा।"

शमशीर उदास-सा चला गया। उसकी वह विषाद-सिक्त-श्वास बाजार की विराट दीवारों के बीच से ऐसे निकल गयी, जैसे छोटे पटाखे अपना ऊपर का बख्तर छोड़ कर निकल जाते हैं—जगमगाते हुए और फिर आसमान में जाकर फूट जाते हैं, लय हो जाते हैं।

वृद्ध सत्तार ने टूटा मूढ़ा एक ओर खिसका लिया और देखा, सामने औरतें खड़ी लड़ रही थीं। वह हँसा। उस हँसी में कितना व्यङ्ग था, कितना विषाद, जैसे आज सब कुछ लड़ रहा था। दो दिन से वह गेहूँ नहीं पा सका था। राशन की भीड़ में घुसना उसके लिए असम्भव था। लेकिन

यह भूख भी पार करनी है, क्योंकि जीना है; क्योंकि सपनों का उजड़ना एक मज़हबी बात है, जैसे भरते-भरते घड़ा फूट जाता है···और वह फिर गुनगुना उठा—

"पहले आती थी हाले दिल पर हँसी," ।

[ आँख उठा कर देखा, जैसे [illegible] आ रही थी।·······



मुद्रक:—सुदर्शनसिंह चौहान, राजस्थान प्रिंटिंग प्रेस,
यशवंतरोड, इन्दौर नगर ( मध्यभारत )